1217

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

भवनभास्कर

(वास्तुशास्त्रकी मुख्य बातें)

राजेन्द्रकुमार धवन

प्रकाशक— गोबिन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

© गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०५७ प्रथमसे द्वितीय संस्करणतक	३०,०००
सं० २०५८ तृतीय संस्करण	१०,०००
सं० २०५८ चतुर्थ संस्करण	२०,०००
सं० २०५८ पञ्चम संस्करण	२०,०००
	योग ८०,०००

मूल्य—दस रुपये

मुद्रक— गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
दूरभाष : ३३४७२१, फैक्स : ३३६९९७

Visit us at : **www.gitapress.org**
e-mail : **gitapres@ndf.vsnl.net.in**

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

प्राक्कथन

हिन्दू-संस्कृति बहुत विलक्षण है। इसके सभी सिद्धान्त पूर्णतः वैज्ञानिक हैं और उनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्यमात्रका कल्याण करना है। मनुष्यमात्रका सुगमतासे एवं शीघ्रतासे कल्याण कैसे हो—इसका जितना गम्भीर विचार हिन्दू-संस्कृतिमें किया गया है, उतना अन्यत्र नहीं मिलता। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य जिन-जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आता है और जो-जो क्रियाएँ करता है, उन सबको हमारे क्रान्तदर्शी ऋषि-मुनियोंने बड़े वैज्ञानिक ढंगसे सुनियोजित, मर्यादित एवं सुसंस्कृत किया है और उन सबका पर्यवसान परम श्रेयकी प्राप्तिमें किया है। इतना ही नहीं, मनुष्य अपने निवासके लिये भवन-निर्माण करता है तो उसको भी वास्तुशास्त्रके द्वारा मर्यादित किया है! वास्तुशास्त्रका उद्देश्य भी मनुष्यको कल्याण-मार्गमें लगाना है—**'वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया'** (विश्वकर्मप्रकाश)। शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार चलनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और शुद्ध अन्तःकरणमें ही कल्याणकी इच्छा जाग्रत् होती है।

'वास्तु' शब्दका अर्थ है—निवास करना (**वस निवासे**)। जिस भूमिपर मनुष्य निवास करते हैं, उसे 'वास्तु' कहा जाता है। कुछ वर्षोंसे लोगोंका ध्यान वास्तुविद्याकी ओर गया है। प्राचीनकालमें विद्यार्थी गुरुकुलमें रहकर चौंसठ कलाओं (विद्याओं)-की शिक्षा प्राप्त करते थे, जिनमें वास्तुविद्या भी सम्मिलित थी। हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसी न जाने कितनी विद्याएँ छिपी पड़ी हैं, जिनकी तरफ अभी लोगोंका ध्यान नहीं गया है! सनत्कुमारजीके पूछनेपर नारदजीने कहा था—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदःसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यःराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याःसर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥

(छान्दोग्योपनिषद् ७। १। २)

'भगवन्! मुझे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद याद है। इनके सिवाय इतिहास-पुराणरूप पाँचवाँ वेद, वेदोंका वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या और देवजनविद्या—हे भगवन्! यह सब मैं जानता हूँ।'

भारतकी अनेक विलक्षण विद्याएँ आज लुप्त हो चुकी हैं और उनको जाननेवालोंका भी अभाव हो गया है। किसी समय यह देश भौतिक और आध्यात्मिक—दोनों दृष्टियोंसे बहुत उन्नत था, पर आज यह दयनीय स्थितिमें है!

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥

(महा०, आश्व० ४४। १९; वाल्मीकि० २। १०५। १६)

'समस्त संग्रहोंका अन्त विनाश है, लौकिक उन्नतियोंका अन्त पतन है, संयोगोंका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है।'

लोगोंकी ऐसी धारणा है कि पहले कभी पाषाणयुग था, आदमी जंगलोंमें रहता था और धीरे-धीरे विकास होते-होते अब मनुष्य वैज्ञानिक उन्नतिके इस युगमें आ गया है। परन्तु वास्तवमें वैज्ञानिक उन्नति पहले कई बार अपने शिखरपर पहुँचकर नष्ट हो चुकी है! पाषाणयुग पहले कई बार आकर जा चुका है और आगे भी पुनः आयेगा! यह सृष्टिचक्र है। इसमें चक्रकी तरह सत्य, त्रेता,

द्वापर और कलि—ये चारों युग दिनरात्रिवत् बार-बार आते हैं और चले जाते हैं। समय पाकर विद्याएँ लुप्त और प्रकट होती रहती हैं। गीतामें भी भगवान्‌ने कहा है—

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

(४। २-३)

'हे परन्तप! इस तरह परम्परासे प्राप्त इस कर्मयोगको राजर्षियोंने जाना; परन्तु बहुत समय बीत जानेके कारण वह योग इस मनुष्यलोकमें लुप्तप्राय हो गया। तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझसे कहा है; क्योंकि यह बड़ा उत्तम रहस्य है।'

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि वास्तुशास्त्रके अनुसार मकान बनानेमात्रसे हम सब दुःखोंसे, कष्टोंसे छूट जायँगे, हमें शान्ति मिल जायगी। वास्तवमें ऐसी बात है नहीं! जिनका मकान वास्तुशास्त्रके अनुसार बना हुआ है, वे भी कष्ट पाते देखे जाते हैं। शान्ति तो कामना-ममताके त्यागसे ही मिलेगी—

'**स शान्तिमाप्नोति न कामकामी**' (गीता २। ७०)
'**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति**' (गीता २। ७१)
'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' (गीता १२। १२)

एक श्लोक आता है—

वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकाराञ्ज्योतिर्विदो ग्रहगतिं परिवर्तयन्ति।
भूताभिषङ्ग इति भूतविदो वदन्ति प्रारब्धकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति॥

'रोगोंके उत्पन्न होनेमें वैद्यलोग कफ, पित्त और वातको कारण मानते हैं, ज्योतिषीलोग ग्रहोंकी गतिको कारण मानते हैं,

प्रेतविद्यावाले भूत-प्रेतोंके प्रविष्ट होनेको कारण मानते हैं; परन्तु मुनिलोग प्रारब्धकर्मको ही बलवान् (कारण) मानते हैं।'

तात्पर्य है कि अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितिके आनेमें मूल कारण प्रारब्ध है। प्रारब्ध अनुकूल हो तो कफ-पित्त-वात, ग्रह आदि भी अनुकूल हो जाते हैं और प्रारब्ध प्रतिकूल हो तो वे सब भी प्रतिकूल हो जाते हैं। यही बात वास्तुके विषयमें भी समझनी चाहिये। देखनेमें भी ऐसा आता है कि जिसे वास्तुशास्त्रका ज्ञान ही नहीं है, उनका मकान भी स्वतः वास्तुशास्त्रके अनुसार बन जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब कुछ प्रारब्धपर छोड़कर बैठ जायँ! हमारा कर्तव्य शास्त्रकी आज्ञाका पालन करना है और प्रारब्धके अनुसार जो परिस्थिति मिले, उसमें सन्तुष्ट रहना है। प्रारब्धका उपयोग केवल अपनी चिन्ता मिटानेमें है। 'करने' का क्षेत्र अलग है और 'होने' का क्षेत्र अलग है। हम व्यापार आदि 'करते' हैं और उसमें लाभ या हानि 'होते' हैं। 'करना' हमारे हाथमें (वशमें) है, 'होना' हमारे हाथमें नहीं हैं। इसलिये हमें 'करने' में सावधान और 'होने' में प्रसन्न रहना है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(२। ४७)

'कर्तव्य-कर्म करनेमें ही तेरा अधिकार है, फलोंमें कभी नहीं। अतः तू कर्मफलका हेतु भी मत बन और तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।'

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६। २४)

'अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही

प्रमाण है—ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य-कर्म करनेयोग्य है, अर्थात् तुझे शास्त्रविधिके अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।'

वास्तुविद्याके अनुसार मकान बनानेसे कुवास्तुजनित कष्ट तो दूर हो जाते हैं, पर प्रारब्धजनित कष्ट तो भोगने ही पड़ते हैं। जैसे—औषध लेनेसे कुपथ्यजन्य रोग तो मिट जाता है, पर प्रारब्धजन्य रोग नहीं मिटता। वह तो प्रारब्धका भोग पूरा होनेपर ही मिटता है। परन्तु इस बातका ज्ञान होना कठिन है कि कौन-सा रोग कुपथ्यजन्य है और कौन-सा प्रारब्धजन्य? इसलिये हमारा कर्तव्य यही है कि रोग होनेपर हम उसकी चिकित्सा करें, उसको मिटानेका उपाय करें। इसी तरह कुवास्तुजनित दोषको दूर करना भी हमारा कर्तव्य है।

वास्तुविद्या बहुत प्राचीन विद्या है। विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में भी इसका उल्लेख मिलता है। इस विद्याके अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं और जो मिलते हैं, उनमें भी परस्पर मतभेद है। वास्तुविद्याके गृह-वास्तु, प्रासाद-वास्तु, नगर-वास्तु, पुर-वास्तु, दुर्ग-वास्तु आदि अनेक भेद हैं। प्रस्तुत 'भवनभास्कर' पुस्तकमें पुराणादि विभिन्न प्राचीन ग्रन्थोंमें विकीर्ण गृह-वास्तुविद्याकी सार-सार बातोंसे पाठकोंको अवगत करानेकी चेष्टा की गयी है। वास्तुविद्या बहुत विशाल है। प्रस्तुत पुस्तकमें वास्तुविद्याका बहुत संक्षिप्तरूपसे दिग्दर्शन कराया गया है। इसको लिखनेमें हमारे परमश्रद्धास्पद स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी ही सत्प्रेरणा रही है और उन्हींकी कृपाशक्तिसे यह कार्य सम्पन्न हो सका है। आशा है, जिज्ञासु पाठकगण इस पुस्तकसे लाभान्वित होंगे।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
विक्रम-संवत् २०५७

निवेदक—
राजेन्द्रकुमार धवन

॥ श्रीहरिः॥

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१.	वास्तुपुरुषका प्रादुर्भाव और वास्तुशास्त्रके उपदेष्टा	९	१३.	गृहके आकारमें परिवर्तन	४१
२.	निवासके योग्य स्थान	१२	१४.	गृह-निर्माणकी सामग्री	४२
३.	भूमि-प्राप्तिके लिये अनुष्ठान	१४	१५.	गृहके समीपस्थ वृक्ष	४६
४.	भूमि-परीक्षा	१५	१६.	गृहके समीपस्थ शुभाशुभ वस्तुएँ	४९
५.	भूमिको शुद्ध करना	१८	१७.	मुख्य द्वार	५०
६.	भूमिकी सतह	१९	१८.	गृहके विविध उपकरण	५९
७.	वास्तुचक्र	२२	१९.	द्वार-वेध	६२
८.	गृहारम्भ	२५	२०.	गृहमें जल-स्थान	६४
९.	वास्तुपुरुष तथा उसके मर्म-स्थान	३०	२१.	गृहके विविध भेद	६६
१०.	गृहनिर्माण-सम्बन्धी आवश्यक बातें	३४	२२.	गृहके आन्तरिक कक्ष	६९
११.	गृहका आकार	३६	२३.	जाननेयोग्य आवश्यक बातें	७३
१२.	धन, ऋण, आय आदिके ज्ञानका उपाय	३८	२४.	गृहप्रवेश	७८
			२५.	वास्तुदोष-निवारणके उपाय	७९

संख्या	रेखाकृति	पृष्ठ-संख्या	संख्या	रेखाकृति	पृष्ठ-संख्या
१.	दिशाओंके देवता एवं ग्रह	११	४.	वास्तुपुरुष	३२
२.	वास्तुचक्र—चौंसठ पदोंवाला	२३	५.	अतिमर्म-स्थान	३३
३.	वास्तुचक्र—इक्यासी पदोंवाला	२४	६.	मुख्य द्वारका स्थान	५३
			७.	वास्तु-दिग्दर्शन	७२

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

भवनभास्कर

पहला अध्याय

लम्बोदरं परमसुन्दरमेकदन्तं रक्ताम्बरं त्रिनयनं परमं पवित्रम्।
उद्यद्दिवाकरनिभोज्ज्वलकान्तिकान्तं विघ्नेश्वरं सकलविघ्नहरं नमामि॥
स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसन्धे।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन्भगवन्प्रसीद॥

वास्तुपुरुषका प्रादुर्भाव और वास्तुशास्त्रके उपदेष्टा

भगवान् शङ्करने जिस समय अन्धकासुरका वध किया, उस समय उनके ललाटसे पृथ्वीपर पसीनेकी बूँदें गिरीं। उनसे एक विकराल मुखवाला प्राणी उत्पन्न हुआ। उस प्राणीने पृथ्वीपर गिरे हुए अन्धकोंके रक्तका पान कर लिया। फिर भी जब वह तृप्त नहीं हुआ, तब वह भगवान् शङ्करके सम्मुख घोर तपस्या करने लगा। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने उससे कहा कि तुम्हारी जो कामना हो, वह वर माँग लो। उसने वर माँगा कि मैं तीनों लोकोंको ग्रसनेमें समर्थ होना चाहता हूँ। वर प्राप्त करनेके बाद वह अपने विशाल शरीरसे तीनों लोकोंको अवरुद्ध करता हुआ पृथ्वीपर आ गिरा। तब भयभीत देवताओंने उसको अधोमुख करके वहीं स्तम्भित कर दिया। जिस देवताने उसको जहाँ दबा रखा था, वह देवता उसके उसी अंगपर निवास करने लगा। सभी देवताओंके निवास करनेके कारण वह 'वास्तु' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥

अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।

(मत्स्यपुराण २५२। २—४)

'भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, भगवान् शङ्कर, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश्वर, शौनक, गर्ग, भगवान् वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति—ये अठारह वास्तुशास्त्रके उपदेष्टा माने गये हैं।'

जब मनुष्य अपने निवासके लिये ईंट, पत्थर आदिसे गृहका निर्माण करता है, तब उस गृहमें वास्तुशास्त्रके नियम लागू हो जाते हैं। वास्तुशास्त्रके नियम ईंट, पत्थर आदिकी दीवारके भीतर ही लागू होते हैं। तारबंदी आदिके भीतर, जिसमेंसे वायु आर-पार होती हो, वास्तुशास्त्रके नियम लागू नहीं होते।

वास्तुशास्त्रमें दिशाओंका बहुत महत्त्व है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायनमें जानेपर उत्तर और दक्षिण तो वही रहते हैं, पर पूर्व और पश्चिममें अन्तर पड़ जाता है। इसलिये ठीक दिशाका ज्ञान करनेके लिये दिग्दर्शकयन्त्र (कम्पास)-की सहायता लेनी चाहिये। इस यन्त्रमें तीन सौ साठ डिग्री रहती है, जिसमें (आठों दिशाओंमें) प्रत्येक दिशाकी पैंतालीस डिग्री रहती है। अतः दिशाका ठीक ज्ञान करनेके लिये डिग्रीको देखना बहुत आवश्यक है। दिशाओंकी स्थिति इस प्रकार है—

ईशान NE	पूर्व EAST	आग्नेय SE
उत्तर NORTH	केन्द्र	दक्षिण SOUTH
वायव्य NW	पश्चिम WEST	नैर्ऋत्य SW

दिशाओंके देवता एवं ग्रह

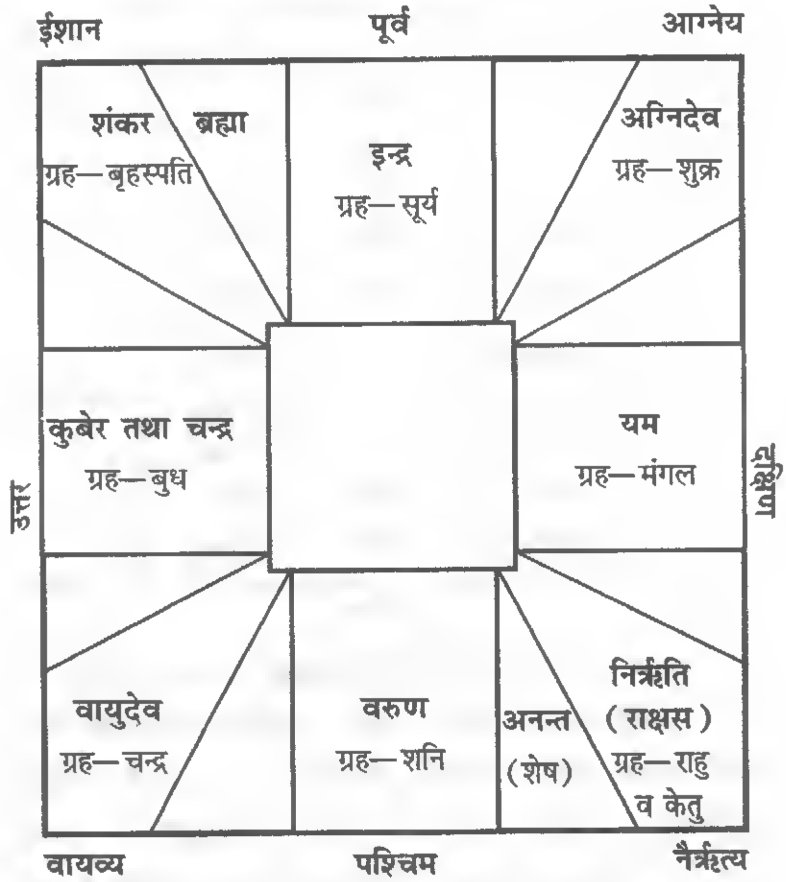

दूसरा अध्याय

निवासके योग्य स्थान

(१) मनुष्यको किस गाँव अथवा नगरमें तथा किस दिशामें निवास करना चाहिये—यह बात नारदपुराणमें इस प्रकार बतायी गयी है।

१. पूर्व

८. ईशान				२. आग्नेय
	शवर्ग (शशक)	अवर्ग (गरुड़)	कवर्ग (मार्जार)	
७. उत्तर	यवर्ग (गज)		चवर्ग (सिंह)	३. दक्षिण
	पवर्ग (मूषक)	तवर्ग (सर्प)	टवर्ग (श्वान)	
६. वायव्य				४. नैर्ऋत्य

५. पश्चिम

अपनेसे पाँचवें वर्गमें अर्थात् सम्मुख दिशामें निवास नहीं करना चाहिये। अपने नामके आदि अक्षरसे अपना वर्ग तथा गाँवके नामके आदि अक्षरसे गाँवका वर्ग समझना चाहिये। उदाहरणार्थ, 'नारायण' नामक व्यक्तिको 'गोरखपुर' में निवास करना है। 'नारायण' का वर्ग तवर्ग तथा दिशा पश्चिम है और 'गोरखपुर' का वर्ग कवर्ग तथा दिशा आग्नेय है। 'नारायण' के वर्गसे 'गोरखपुर' का वर्ग छठा पड़ता है; अतः गोरखपुर निवासके लिये योग्य स्थान हुआ।

अब यह विचार करना है कि 'नारायण' नामक व्यक्तिको

'गोरखपुर' में रहने तथा व्यापार करनेसे कितना लाभ होगा? साधक (नारायण)-की वर्ग-संख्या ५ है और साध्य (गोरखपुर)-की वर्ग-संख्या २ है।

साधक · साध्य ÷ ८ = धन (लाभ)

साध्य · साधक ÷ ८ = ऋण (खर्च)

पहले साधककी वर्ग-संख्या और फिर साध्यकी वर्ग-संख्या रखनेसे ५२ संख्या हुई। इसमें ८ का भाग देनेसे ४ बचा। यह साधकका 'धन' हुआ। इससे विपरीत वर्ग-संख्या २५ को ८ का भाग देनेसे १ बचा। यह साधकका 'ऋण' हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि साधक 'नारायण' को साध्य 'गोरखपुर' में निवास करने तथा व्यापार करनेसे ४ लाभ तथा १ खर्च होता रहेगा।

(यदि ८ का भाग देनेसे शून्य बचे तो उसे ८ ही मानना चाहिये।)

(२) अपनी राशिसे जिस गाँवकी राशि दूसरी, पाँचवीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं हो, वह गाँव निवासके लिये शुभ होता है। यदि अपनी राशिसे गाँवकी राशि एक अथवा सातवीं हो तो शत्रुता, तीसरी अथवा छठी हो तो हानि, चौथी, आठवीं अथवा बारहवीं हो तो रोग होता है।

(३) ईशानमें चरकी, आग्नेयमें विदारी, नैर्ऋत्यमें पूतना और वायव्यमें पापराक्षसी निवास करती है। इसलिये गाँवके कोनोंमें निवास करनेसे दोष लगता है। परन्तु अन्त्यज, श्वपच आदि जातियोंके लिये कोनोंमें निवास करना शुभ एवं उन्नतिकारक है।

तीसरा अध्याय

भूमि-प्राप्तिके लिये अनुष्ठान

किसी व्यक्तिको प्रयत्न करनेपर भी निवासके लिये भूमि अथवा मकान न मिल रहा हो, उसे भगवान् वराहकी उपासना करनी चाहिये। भगवान् वराहकी उपासना करनेसे, उनके मन्त्रका जप करनेसे, उनकी स्तुति-प्रार्थना करनेसे अवश्य ही निवासके योग्य भूमि या मकान मिल जाता है।

स्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डमें आया है कि भूमि प्राप्त करनेके इच्छुक मनुष्यको सदा ही इस मन्त्रका जप करना चाहिये—

ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा।

ध्यान—भगवान् वराहके अंगोंकी कान्ति शुद्ध स्फटिक गिरिके समान श्वेत है। खिले हुए लाल कमलदलोंके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं। उनका मुख वराहके समान है, पर स्वरूप सौम्य है। उनकी चार भुजाएँ हैं। उनके मस्तकपर किरीट शोभा पाता है और वक्ष:स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है। उनके चार हाथोंमें चक्र, शङ्ख, अभय-मुद्रा और कमल सुशोभित है। उनकी बायीं जाँघपर सागराम्बरा पृथ्वीदेवी विराजमान हैं। भगवान् वराह लाल, पीले वस्त्र पहने तथा लाल रंगके ही आभूषणोंसे विभूषित हैं। श्रीकच्छपके पृष्ठके मध्य भागमें शेषनागकी मूर्ति है। उसके ऊपर सहस्रदल कमलका आसन है और उसपर भगवान् वराह विराजमान हैं।

उपर्युक्त मन्त्रके सङ्कर्षण ऋषि, वाराह देवता, पंक्ति छन्द और श्री बीज है। इसके चार लाख जप करे और घी व मधुमिश्रित खीरका हवन करे।

चौथा अध्याय

भूमि-परीक्षा

(१) जिस भूमिपर हरे-भरे वृक्ष, पौधे, घास आदि हों और खेतीकी उपज भी अच्छी होती हो, वह भूमि जीवित है। ऊसर, चूहेके बिल, बांबी आदिसे युक्त, ऊबड़-खाबड़, काँटेदार पौधों एवं वृक्षोंवाली भूमि मृत है। मृत भूमि त्याज्य है।

ऊसर भूमि धनका नाश करनेवाली है। चूहेके बिलोंवाली भूमि भी धनका नाश करनेवाली है। बाँबी (दीमक)-वाली भूमि पुत्रका नाश करनेवाली है। फटी हुई भूमि मरण देनेवाली है। शल्यों (हड्डियों)-से युक्त भूमि क्लेश देनेवाली है। ऊँची-नीची भूमि शत्रु बढ़ानेवाली है। गड्ढोंवाली भूमि विनाश करनेवाली है। टीलोंवाली भूमि कुलमें विपत्ति लानेवाली है। टेढ़ी भूमि बन्धुओंका नाश करनेवाली है। दुर्गन्धयुक्त भूमि पुत्रका नाश करनेवाली है।

(२) भूखण्डके मध्यमें एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें*। फिर खोदी हुई सारी मिट्टी पुनः उसी गड्ढे में भरें। यदि गड्ढा भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो वह श्रेष्ठ भूमि है। उस भूमिमें निवास करनेसे धन-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। यदि मिट्टी गड्ढेके बराबर निकलती है तो वह मध्यम भूमि है। यदि मिट्टी गड्ढेसे कम निकलती है तो वह अधम भूमि है। उस भूमिमें निवास करनेसे सुख-सौभाग्य एवं धन-सम्पत्तिकी हानि होती है।

(३) उपर्युक्त प्रकारसे गड्ढा खोदकर उसमें पानी भर दें। पानी भरकर उत्तर दिशाकी ओर सौ कदम चलें। लौटनेपर देखें।

---

* केहुनीसे अनामिकातक एक हाथ (अरत्रि)-का परिमाण होता है। चौबीस अंगुलका एक हाथ होता है।

यदि गड्ढेमें पानी उतना ही रहे तो वह श्रेष्ठ भूमि है। यदि पानी कुछ कम (आधा) रहे तो वह मध्यम भूमि है। यदि पानी बहुत कम रह जाय तो वह अधम भूमि है।

(४) उपर्युक्त प्रकारसे गड्ढा खोदकर उसमें सायंकाल पानी भर दें। प्रातःकाल देखें। यदि गड्ढेमें जल दीखे तो उस स्थानमें निवास करनेसे वृद्धि होगी। यदि गड्ढेमें कीचड़ दीखे तो उस स्थानमें निवास करनेसे मध्यम फल होगा। यदि गड्ढेमें दरार दीखे तो उस स्थानमें निवास करनेसे हानि होगी।

(५) भूखण्डमें हल जुतवाकर सर्वबीज (व्रीहि, शाठी, मूँग, गेहूँ, सरसों, तिल, जौ) बो दें। यदि वे बीज तीन रातमें अंकुरित हों तो भूमि उत्तम है, पाँच रातमें अंकुरित हों तो भूमि मध्यम है और सात रातमें अंकुरित हों तो भूमि अधम है।

(६) एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे सब ओरसे अच्छी तरह लीप-पोतकर स्वच्छ कर दें। फिर एक कच्चे पुरवेमें घी भरकर उसमें चारों दिशाओंकी ओर मुख करके चार बत्तियाँ जला दें और उसी गड्ढेमें रख दें। यदि पूर्व दिशाकी बत्ती अधिक समयतक जलती रहे तो उसे ब्राह्मणके लिये शुभ मानना चाहिये। इसी प्रकार क्रमशः उत्तर, पश्चिम और दक्षिणकी बत्तियोंको क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये शुभ समझना चाहिये। यदि वह वास्तुदीपक चारों दिशाओंमें जलता रहे तो वहाँकी भूमि सभी वर्णोंके लिये शुभ समझनी चाहिये।

(७) जिस भूमिमें गड्ढा खोदनेपर अथवा हल जोतनेपर भस्म, अंगार, हड्डियाँ, भूसी, केश, कोयला आदि निकलें, वह भूमि अशुभ होनेसे त्याज्य है। यदि भूमिसे लकड़ी निकले तो अग्निका भय, हड्डियाँ निकलें तो कुलका नाश, सर्प निकले तो

चोरका भय, कोयला निकले तो रोग या मृत्यु, भूसी निकले तो धनका नाश होता है। यदि भूमिसे पत्थर, ईंट, कंकड़, शङ्ख आदि निकलें तो उस भूमिको शुभ समझना चाहिये।

(८) भविष्यपुराण (मध्यम० १। ९)-में आया है कि जलके ऊपर तथा मन्दिरके ऊपर रहनेके लिये घर नहीं बनवाना चाहिये।

(९) ब्राह्मणके लिये श्वेतवर्णा भूमि, क्षत्रियके लिये रक्तवर्णा भूमि, वैश्यके लिये पीतवर्णा भूमि और शूद्रके लिये कृष्णवर्णा भूमि शुभ होती है।

(१०) ब्राह्मणके लिये घृतके समान गन्धवाली, क्षत्रियके लिये रक्तके समान गन्धवाली, वैश्यके लिये अन्नके समान गन्धवाली और शूद्रके लिये मद्यके समान गन्धवाली भूमि शुभ होती है।

(११) ब्राह्मणके लिये मीठे स्वादवाली, क्षत्रियके लिये कषैले स्वादवाली, वैश्यके लिये खट्टे स्वादवाली और शूद्रके लिये कड़वे स्वादवाली मिट्टी शुभ होती है। मीठे स्वादवाली भूमि सब वर्णोंके लिये शुभ है।

पाँचवाँ अध्याय

भूमिको शुद्ध करना

(१) **सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च।**
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः॥

(मनुस्मृति ५। १२४)

'सम्मार्जन (झाड़ना), लीपना (गोबर आदिसे), सींचना (गोमूत्र, गङ्गाजल आदिसे), खोदना (ऊपरकी कुछ मिट्टी खोदकर फेंक देना) और (एक दिन-रात) गायोंको ठहराना—इन पाँच प्रकारोंसे भूमिकी शुद्धि होती है।'

(२) भूमिके भीतर यदि गायका शल्य (हड्डी) हो तो राजभय, मनुष्यका शल्य हो तो सन्तानका नाश, बकरेका शल्य हो तो अग्निसे भय, घोड़ेका शल्य हो तो रोग, गधे या ऊँटका शल्य हो तो हानि, कुत्तेका शल्य हो तो कलह तथा नाश होता है। यदि भूमिमें एक पुरुष नापके नीचे शल्य हो तो उसका दोष नहीं लगता*। इसलिये यदि सम्पूर्ण भूखण्डकी मिट्टी एक पुरुषतक खोदकर फेंक दी जाय और उसकी जगह नयी मिट्टी छानकर भर दी जाय तो वह भूमि मकान बनानेके लिये श्रेष्ठ होती है।

---

* चाहे दोनों हाथ फैला दें, चाहे तीन कदम चलें और चाहे सिरसे पैरतक नापें—यह एक पुरुषका नाप है। बारह अंगुलका एक वित्ता होता है और दस वित्ता (१२० अंगुल)-का एक पुरुष होता है।

छठा अध्याय

भूमिकी सतह

(१) नारदपुराण (पूर्व० ५६। ५४२)-में आया है कि पूर्व, उत्तर और ईशान दिशामें नीची भूमि सब मनुष्योंके लिये अत्यन्त वृद्धिकारक होती है। अन्य दिशाओंमें नीची भूमि सबके लिये हानिकारक होती है।

सुग्रीवके राज्याभिषेकके बाद भगवान् श्रीरामने प्रस्रवणगिरिके शिखरपर अपने रहनेके लिये एक गुफा चुनी। उस गुफाके विषयमें वे लक्ष्मणसे कहते हैं—

प्रागुदक्प्रवणे देशे गुहा साधु भविष्यति।
पश्चाच्चैवोन्नता सौम्य निवातेयं भविष्यति॥

(वाल्मीकि०, किष्किंधा० २७। १२)

'सौम्य! यहाँका स्थान ईशानकोणकी ओरसे नीचा है; अतः यह गुफा हमारे निवासके लिये बहुत अच्छी रहेगी। नैर्ऋत्यकोणकी ओरसे ऊँची यह गुफा हवा और वर्षासे बचानेके लिये अच्छी होगी।'

(२) **पूर्व**में ऊँची भूमि पुत्र और धनका नाश करनेवाली है।

आग्नेयमें ऊँची भूमि धन देनेवाली है।

दक्षिणमें ऊँची भूमि सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा नीरोग करनेवाली है।

नैर्ऋत्यमें ऊँची भूमि धनदायक है।

पश्चिममें ऊँची भूमि पुत्रप्रद तथा धन-धान्यकी वृद्धि करनेवाली है।

वायव्यमें ऊँची भूमि धनदायक है।

उत्तरमें ऊँची भूमि पुत्र और धनका नाश करनेवाली है।

ईशानमें ऊँची भूमि महाक्लेशकारक है।

(३) **पूर्व**में नीची भूमि पुत्रदायक तथा धनकी वृद्धि करनेवाली है।

आग्नेयमें नीची भूमि धनका नाश करनेवाली, मृत्यु तथा शोक देनेवाली और अग्निभय करनेवाली है।

दक्षिणमें नीची भूमि मृत्युदायक, रोगदायक, पुत्र-पौत्रविनाशक, क्षयकारक और अनेक दोष करनेवाली है।

नैर्ऋत्यमें नीची भूमि धनकी हानि करनेवाली, महान् भयदायक, रोगदायक और चोरभय करनेवाली है।

पश्चिममें नीची भूमि धननाशक, धान्यनाशक, कीर्तिनाशक, शोकदायक, पुत्रक्षयकारक तथा कलहकारक है।

वायव्यमें नीची भूमि परदेशवास करानेवाली, उद्वेगकारक, मृत्युदायक, कलहकारक, रोगदायक तथा धान्यनाशक है।

उत्तरमें नीची भूमि धन-धान्यप्रद और वंशवृद्धि करनेवाली अर्थात् पुत्रदायक है।

ईशानमें नीची भूमि विद्या देनेवाली, धनदायक, रत्नसंचय करनेवाली और सुखदायक है।

मध्यमें नीची भूमि रोगप्रद तथा सर्वनाश करनेवाली है।

(४) पूर्व व आग्नेयके मध्य ऊँची और पश्चिम व वायव्यके मध्य नीची भूमि 'पितामह वास्तु' कहलाती है। यह सुख देनेवाली है।

दक्षिण व आग्नेयके मध्य ऊँची और उत्तर व वायव्यके मध्य नीची भूमि 'सुपथ वास्तु' कहलाती है। यह सब कार्योंमें शुभ है।

उत्तर व ईशानके मध्य नीची और नैर्ऋत्य व दक्षिणके मध्य ऊँची भूमि 'दीर्घायु वास्तु' कहलाती है। यह कुलकी वृद्धि करनेवाली है।

पूर्व व ईशानमें नीची और पश्चिम व नैर्ऋत्यमें ऊँची भूमि 'पुण्यक वास्तु' कहलाती है। यह द्विजोंके लिये शुभ है।

पूर्व व आग्नेयके मध्य नीची और वायव्य व पश्चिमके मध्य ऊँची भूमि 'अपथ वास्तु' कहलाती है। यह वैर तथा कलह करानेवाली है।

दक्षिण व आग्नेयके मध्य नीची और उत्तर व वायव्यके मध्य ऊँची भूमि 'रोगकर वास्तु' कहलाती है। यह रोग पैदा करनेवाली है।

दक्षिण व नैर्ऋत्यके मध्य नीची और उत्तर व ईशानके मध्य ऊँची भूमि 'अर्गल वास्तु' कहलाती है। यह पापोंका नाश करनेवाली है।

पूर्व व ईशानके मध्य ऊँची और पश्चिम व नैर्ऋत्यके मध्य नीची भूमि 'श्मशान वास्तु' कहलाती है। यह कुलका नाश करनेवालो है।

आग्नेयमें नीची और नैर्ऋत्य, ईशान तथा वायव्यमें ऊँची भूमि 'शोक वास्तु' कहलाती है। यह मृत्युकारक है।

ईशान, आग्नेय व पश्चिममें ऊँची और नैर्ऋत्यमें नीची भूमि 'श्वमुख वास्तु' कहलाती है। यह दरिद्र करनेवाली है।

नैर्ऋत्य, आग्नेय व ईशानमें ऊँची तथा पूर्व व वायव्यमें नीची भूमि 'ब्रह्मघ्न वास्तु' कहलाती है। यह निवास करनेयोग्य नहीं है।

आग्नेयमें ऊँची और नैर्ऋत्य, ईशान तथा वायव्यमें नीची भूमि 'स्थावर वास्तु' कहलाती है। यह शुभ है।

नैर्ऋत्यमें ऊँची और आग्नेय, वायव्य व ईशानमें नीची भूमि 'स्थण्डिल वास्तु' कहलाती है। यह शुभ है।

ईशानमें ऊँची और वायव्य, आग्नेय व नैर्ऋत्यमें नीची भूमि 'शाण्डुल वास्तु' कहलाती है। यह अशुभ है।

(५) दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायव्यकी ओर ऊँची भूमि 'गजपृष्ठ भूमि' कहलाती है। यह धन, आयु और वंशकी वृद्धि करनेवाली है।

मध्यमें ऊँची तथा चारों ओर नीची भूमि 'कूर्मपृष्ठ भूमि' कहलाती है। यह उत्साह, धन-धान्य तथा सुख देनेवाली है।

पूर्व, आग्नेय तथा ईशानमें ऊँची और पश्चिममें नीची भूमि 'दैत्यपृष्ठ भूमि' कहलाती है, यह धन, पुत्र, पशु आदिकी हानि करनेवाली तथा प्रेत-उपद्रव करनेवाली है।

पूर्व-पश्चिमकी ओर लम्बी तथा उत्तर-दक्षिणमें ऊँची भूमि 'नागपृष्ठ भूमि' कहलाती है। यह उच्चाटन, मृत्युभय, स्त्री-पुत्रादिकी हानि, शत्रुवृद्धि, मानहानि तथा धनहानि करनेवाली है।

सातवाँ अध्याय

वास्तुचक्र

(१) वास्तुशास्त्रमें विधान आया है कि सूत्र-स्थापन करनेमें, भूमि-शोधन करनेमें, द्वार बनानेमें, शिलान्यास करनेमें और गृहप्रवेशके समय—इन पाँच कर्मोंमें वास्तुपूजन करना चाहिये।

(२) गाँव, नगर और राजगृहके निर्माणमें ६४ (चौंसठ) पदवाले वास्तुपुरुषका पूजन करना चाहिये।

गृहनिर्माणमें ८१ (इक्यासी) पदवाले वास्तुपुरुषका पूजन करना चाहिये।

देवमन्दिरके निर्माणमें १०० (सौ) पदवाले वास्तुपुरुषका पूजन करना चाहिये।

जीर्णोद्धार में ४९ (उन्चास) पदवाले और कूप, वापी, तड़ाग तथा वनके निर्माणमें १९६ (एक सौ छियानबे) पदवाले वास्तुपुरुषका पूजन करना चाहिये।

(३) मत्स्यपुराणमें आया है कि सुवर्णकी सलाईद्वारा रेखा खींचकर इक्यासी कोष्ठ बनाये। पिष्टकसे चुपड़े हुए सूतसे दस रेखाएँ पूर्वसे पश्चिम तथा दस रेखाएँ उत्तरसे दक्षिणकी ओर खींचे। फिर उन कोष्ठोंमें स्थित पैंतालीस देवताओंकी पूजा करे। उनमें बत्तीसकी बाहरसे तथा तेरहकी भीतरसे पूजा करे।

वास्तुचक्र

(चौंसठ पदोंवाला)

ईशान — पूर्व — आग्नेय

चरकी — **स्कन्द** — **विदारिका**

उत्तर पिलिपिच्छ — दक्षिण अर्यमा

शिखी / दिति	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	अंतरिक्ष / अनिल
अदिति	पर्जन्य / अदिति	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश / पूषा	पूषा
भुजग	भुजग	आपवत्स / आप	अर्यमा	अर्यमा	सविता / सावित्र	वितथ	वितथ
सोम	सोम	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	बृहत्क्षत	बृहत्क्षत
भल्लाट	भल्लाट	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	यम	यम
मुख्य	मुख्य	रुद्र / राजयक्ष्मा	मित्र	मित्र	इन्द्र / जयन्त	गन्धर्व	गन्धर्व
नाग	नाग / शोष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	भृंगराज / दौवारिक	भृंगराज
रोग / पापयक्ष्मा	शोष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	दौवारिक	मृग / पिता

पापराक्षसी — **जम्बुक** — **पूतना**

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

वास्तुचक्र

(इक्यासी पदोंवाला)

ईशान — पूर्व — आग्नेय

चरकी — **स्कन्द** — **विदारी**

पिलिपिञ्छ उत्तर (left) — अर्यमा दक्षिण (right)

शिखी १	पर्जन्य २	जयन्त ३	इन्द्र ४	सूर्य ५	सत्य ६	भृश ७	अंतरिक्ष ८	अनिल ९
दिति ३२	आप ३३	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	सावित्र ३४	पूषा १०
अदिति ३१	अदिति	आपवत्स ४४	अर्यमा	अर्यमा ३७	अर्यमा	सविता ३८	वितथ	वितथ ११
भुजग ३०	भुजग	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	बृहत्क्षत	बृहत्क्षत १२
सोम २९	सोम	पृथ्वीधर ४३	ब्रह्मा	ब्रह्मा ४५	ब्रह्मा	विवस्वान् ३९	यम	यम १३
भल्लाट २८	भल्लाट	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	गन्धर्व	गन्धर्व १४
मुख्य २७	मुख्य	राजयक्ष्मा ४२	मित्र	मित्र ४१	मित्र	इन्द्र ४०	भृंगराज	भृंगराज १५
नाग २६	रुद्र ३६	शोष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	जय ३५	मृग १६
रोग २५	पापयक्ष्मा २४	शोष २३	असुर २२	वरुण २१	पुष्पदंत २०	सुग्रीव १९	दौवारिक १८	पिता १७

पापराक्षसी — **जम्बुक** — **पूतना**

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

आठवाँ अध्याय

गृहारम्भ

(१) गृहारम्भ और गृहप्रवेशके समय कुलदेवता, गणेश, क्षेत्रपाल, वास्तुदेवता और दिक्पतिकी विधिवत् पूजा करे। आचार्य, द्विज और शिल्पीको विधिवत् सन्तुष्ट करे। शिल्पीको वस्त्र और अलंकार दे। ऐसा करनेसे घरमें सदा सुख रहता है।

जो मनुष्य सावधान होकर गृहारम्भ या गृहप्रवेशके समय वास्तुपूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, धन और धान्य प्राप्त करके सुखी होता है। परन्तु जो मनुष्य वास्तुपूजा न करके नये घरमें प्रवेश करता है, वह नाना प्रकारके रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है।

(२) मेष, वृष, कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, मकर और कुम्भ—इन राशियोंके सूर्यमें गृहारम्भ करना चाहिये। मिथुन, कन्या, धनु और मीन—इन राशियोंके सूर्यमें गृह-निर्माण आरम्भ नहीं करना चाहिये।

मेष राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे शुभ फलकी प्राप्ति होती है।

वृष राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे धनकी वृद्धि होती है।

मिथुन राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे मृत्यु होती है।

कर्क राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे शुभ फलकी प्राप्ति होती है।

सिंह राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे सेवकोंकी वृद्धि होती है।

कन्या राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे रोग होता है।

तुला राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे सुख होता है।

वृश्चिक राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे धनकी वृद्धि होती है।

धनु राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे महान् हानि होती है।

मकर राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे धन प्राप्त होता है।

कुम्भ राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे रत्नलाभ होता है।

मीन राशिके सूर्यमें गृहारम्भ करनेसे रोग तथा भय होता है।

(३) अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, उत्तराभाद्रपद और रेवती—ये नक्षत्र गृहारम्भमें श्रेष्ठ माने गये हैं।

(४) शुक्लपक्षमें गृहारम्भ करनेसे सुख और कृष्णपक्षमें गृहारम्भ करनेसे चोर-डाकुओंसे भय होता है।

(५) चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, पौष और माघ—ये मास गृहारम्भके लिये निषिद्ध कहे गये हैं। वैशाख, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष और फाल्गुन—ये मास गृहारम्भके लिये उत्तम कहे गये हैं।

चैत्र मासमें गृहारम्भ करनेसे रोग और शोककी प्राप्ति होती है।

वैशाख मासमें गृहारम्भ करनेसे धन-धान्य, पुत्र तथा आरोग्यकी प्राप्ति होती है।

ज्येष्ठ मासमें गृहारम्भ करनेसे मृत्यु तथा विपत्ति प्राप्त होती है।

आषाढ़ मासमें गृहारम्भ करनेसे पशुओंकी हानि होती है।

श्रावण मासमें गृहारम्भ करनेसे पशु, धन और मित्रोंकी वृद्धि होती है।

भाद्रपद मासमें गृहारम्भ करनेसे मित्रोंका ह्रास, दरिद्रता तथा विनाश होता है।

आश्विन मासमें गृहारम्भ करनेसे पत्नीका नाश, कलह तथा

लड़ाई-झगड़ा होता है।

कार्तिक मासमें गृहारम्भ करनेसे पुत्र, आरोग्य एवं धनकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्ष मासमें गृहारम्भ करनेसे उत्तम भोज्य-पदार्थोंकी तथा धनकी प्राप्ति होती है।

पौष मासमें गृहारम्भ करनेसे चोरोंका भय होता है।

माघ मासमें गृहारम्भ करनेसे अग्निका भय होता है।

फाल्गुन मासमें गृहारम्भ करनेसे धन तथा सुखकी प्राप्ति और वंशकी वृद्धि होती है।

(कुछ ग्रन्थोंमें गृहारम्भके लिये आषाढ़ एवं पौषको शुभ और कार्तिकको अशुभ बताया गया है।)

ईंट-पत्थरके घरमें मासदोषका विचार करना चाहिये। घास-फूस एवं लकड़ीका घर बनानेमें मासदोष नहीं लगता।

(६) द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा—ये तिथियाँ गृहारम्भके लिये शुभ फल देनेवाली हैं।

प्रतिपदा दरिद्रताकारक, चतुर्थी धननाशक, अष्टमी उच्चाटन करनेवाली, नवमी धान्यनाशक तथा शस्त्रसे चोट पहुँचानेवाली, चतुर्दशी पुत्र व स्त्रियोंका नाश करनेवाली और अमावस्या राजभय देनेवाली है।

(७) सोम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि—ये वार गृहारम्भके लिये उत्तम हैं। रविवार और मंगलवारको गृहारम्भ (भूमि खोदनेका कार्य) कदापि नहीं करना चाहिये, अन्यथा अनिष्ट होनेकी सम्भावना है।

(८) घर, देवालय और जलाशय (कुआँ, तालाब) बनाते

समय नींव खोदनेके लिये राहुकी दिशाका विचार करना आवश्यक होता है। किस राशिके सूर्यमें राहुका मुख, पुच्छ तथा पृष्ठ (पीठ) किस दिशामें रहता है—इसे निम्न तालिकासे जानना चाहिये—

गृहारम्भ	सिंह, कन्या, तुला	वृश्चिक, धनु, मकर	कुम्भ, मीन, मेष	वृष, मिथुन, कर्क
देवालयारम्भ	मीन, मेष, वृष	मिथुन, कर्क, सिंह	कन्या, तुला, वृश्चिक	धनु, मकर, कुम्भ
जलाशयारम्भ	मकर, कुम्भ, मीन	मेष, वृष, मिथुन	कर्क, सिंह, कन्या	तुला, वृश्चिक, धनु
राहुका मुख	ईशान	वायव्य	नैर्ऋत्य	आग्नेय
राहुका पुच्छ	नैर्ऋत्य	आग्नेय	ईशान	वायव्य
राहुका पृष्ठ (पीठ)	आग्नेय	ईशान	वायव्य	नैर्ऋत्य

उदाहरणार्थ—सिंह, कन्या अथवा तुला-राशिके सूर्यमें घरका निर्माण आरम्भ करना हो तो इस समय राहुका मुख ईशानमें तथा पुच्छ नैर्ऋत्यमें है। मुख तथा पुच्छको छोड़कर पीठमें अर्थात् आग्नेय दिशामें नींव खोदना शुभ होगा। इसी प्रकार देवालय तथा जलाशयके निर्माणमें भी राहुकी पीठमें नींव खोदनी चाहिये।

(९) मार्गशीर्ष, पौष और माघ मासमें राहु पूर्वमें रहता है। फाल्गुन, चैत्र और वैशाख मासमें राहु दक्षिणमें रहता है। ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण मासमें राहु पश्चिममें रहता है। भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक मासमें राहु उत्तरमें रहता है। राहुकी दिशामें स्तम्भ रखनेसे वंशका नाश, द्वार बनानेसे अग्निका भय, गमन

करनेसे कार्यकी हानि और गृहारम्भ करनेसे कुलका क्षय होता है।

(१०) नींव खोदते समय भूमिके भीतरसे यदि पत्थर मिलें तो धन तथा आयुकी वृद्धि होती है। ईंट मिले तो धनप्राप्ति तथा समृद्धि होती है। धातु मिले तो वृद्धि होती है। लकड़ी मिले तो अग्निसे भय होता है। राख या कोयला मिले तो रोग होता है। भूसी मिले तो धनका नाश होता है। हड्डी मिले तो कुलका नाश होता है। कौड़ी मिले तो लड़ाई-झगड़ा एवं दुःख होता है। कपास मिले तो रोग व दुःखकी प्राप्ति होती है। खर्पर मिले तो कलह, लड़ाई-झगड़ा होता है। लोहा मिले तो मृत्यु होती है। भूमिमेंसे चींटी, मेंढक, साँप, बिच्छू आदिका निकलना अशुभ है।

(११) शिलान्यास सर्वप्रथम आग्नेय दिशामें करना चाहिये। फिर शेष निर्माण प्रदक्षिण-क्रमसे करना चाहिये। गृह-निर्माणकी समाप्ति दक्षिणमें नहीं होनी चाहिये, अन्यथा धनका नाश, स्त्रीमें दोष एवं पुत्रकी मृत्यु सम्भव है।

(१२) ध्रुवतारेको देखकर या स्मरण करके नींव रखनी चाहिये। मध्याह्न, मध्यरात्रि तथा सन्ध्याकालमें नींव नहीं रखनी चाहिये। मध्याह्न तथा मध्यरात्रिमें शिलान्यास करनेसे कर्ताका और धनका नाश होता है।

(१३) शिलान्यासके लिये चौकोर एवं अखण्ड शिला लेनी चाहिये। लम्बी, छोटी, टेढ़ी-मेढ़ी, खण्डित, काले रंगकी एवं टूटी-फूटी शिला अशुभ तथा भयप्रद है।

(१४) गृहारम्भके समय कठोर वचन बोलना, थूकना और छींकना अशुभ है।

नवाँ अध्याय

वास्तुपुरुष तथा उसके मर्म-स्थान

(१) वास्तुपुरुष ईशानकोणमें सिर करके अधोमुख होकर स्थित है। उसका सिर 'शिखी' में है। बायाँ नेत्र 'दिति' में तथा दायाँ नेत्र 'पर्जन्य' में है। मुख 'आप' में है। बायाँ कान 'अदिति' में तथा दायाँ कान 'जयन्त' में है। बायाँ कन्धा 'भुजग' में तथा दायाँ कन्धा 'इन्द्र' में है। बायीं भुजा 'सोम', 'भल्लाट', 'मुख्य', 'नाग', और 'रोग' में तथा दायीं भुजा 'सूर्य', 'सत्य', 'भृश', 'अन्तरिक्ष' और 'अनिल' में है। बायाँ मणिबंध 'पापयक्ष्मा' में तथा दायाँ मणिबंध 'पूषा' में है। बायाँ हाथ 'रुद्र' और 'राजयक्ष्मा' में तथा दायाँ हाथ 'सावित्र' और 'सविता' में है। छाती 'आपवत्स' में है। बायाँ स्तन 'पृथ्वीधर' में और दायाँ स्तन 'अर्यमा' में है। हृदय 'ब्रह्मा' में है। पेट 'मित्र' तथा 'विवस्वान्' में है। बायीं बगल 'शोष' तथा 'असुर' में और दायीं बगल 'वितथ' तथा 'बृहत्क्षत' में है। बायाँ ऊरु (घुटनेसे ऊपरका भाग) 'वरुण' में तथा दायाँ ऊरु 'यम' में है। बायाँ घुटना 'पुष्पदन्त' में तथा दायाँ घुटना 'गन्धर्व' में है। बायीं जंघा (घुटनेसे नीचेका भाग) 'सुग्रीव' में तथा दायीं जंघा 'भृंगराज' में है। लिंग 'इन्द्र' तथा 'जय' में है। बायाँ नितम्ब 'दौवारिक' तथा दायाँ नितम्ब 'मृग' में है। पैर 'पिता' में हैं।

(२) सिर, मुख, हृदय, दोनों स्तन और लिंग—ये वास्तुपुरुषके मर्म-स्थान हैं।

(३) रोगसे अनिलतक, पितासे शिखीतक, वितथसे शोषतक, मुख्यसे भृशतक, जयन्तसे भृंगराजतक और अदितिसे सुग्रीवतक विस्तृत सूत्रोंका जो नौ स्थानोंमें स्पर्श होता है, वे वास्तुपुरुषके अतिमर्म-स्थान हैं। ये नौ अतिमर्म-स्थान ब्रह्मस्थानमें आते हैं।

(४) वास्तुपुरुषके जिस मर्म-स्थान (अंग)-में कोई शल्य हो

अथवा वहाँ कील, खम्भा आदि गाड़ा जाय तो गृहस्वामीके उसी अंगमें पीड़ा या रोग उत्पन्न हो जायगा।

(५) यदि मर्म-स्थानमें लकड़ीका शल्य हो तो धनकी हानि होगी। हड्डीका शल्य हो तो रोगका भय होगा। लोहेका शल्य हो तो शस्त्रका भय होगा। कपाल या केश हो तो मृत्यु होगी। कोयला हो तो चोरसे भय होगा। भस्म हो तो अग्निभय होगा। भूसा हो तो धनका आना बन्द होगा।

(६) यदि वास्तुपुरुष दायीं भुजासे रहित हो तो धनका नाश एवं स्त्रीकृत दोष होता है। बायीं भुजासे रहित हो तो धन-धान्यका नाश होता है। सिरसे रहित हो तो धन, आरोग्य आदि सब गुणोंका नाश होता है। पैरसे रहित हो तो स्त्री-दोष, पुत्रनाश एवं दासत्वकी प्राप्ति होती है।

(७) घरके मध्यमें स्थित ब्रह्मस्थान (ब्रह्माके नौ पद)-की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। उस जगह कोई निर्माण (दीवार, खम्भा) नहीं करना चाहिये। वहाँ जूठे बर्तन, अपवित्र पदार्थ भी नहीं रखने चाहिये। यदि ब्रह्मस्थानमें दीवार, खम्भा, दरवाजा आदि बनाया जाय अथवा जूठे बर्तन, अपवित्र वस्तु, हड्डी, भस्म आदि रखे जायँ या कील गाड़ी जाय तो धन-धान्यका नाश होता है और अनेक प्रकारके रोग तथा शोक उत्पन्न होते हैं।

ब्रह्मस्थान निकालनेके लिये गृहभूमिकी लम्बाई और चौड़ाईके तीन-तीन बराबर भाग करें। बीचका भाग ब्रह्मस्थान होगा। जैसे—

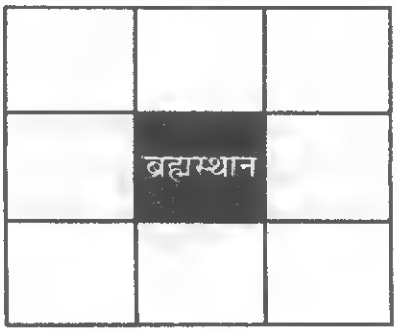

वास्तुपुरुष

ईशान पूर्व आग्नेय

शिखी **सिर**	पर्जन्य **नेत्र**	जयन्त **कान**	इन्द्र **कंधा**	सूर्य **भुजा**	सत्य **भुजा**	भृश **भुजा**	अंतरिक्ष **भुजा**	अनिल **भुजा**
दिति **नेत्र**	आप **मुख**						सावित्र **हाथ**	पूषा **मणिबंध**
अदिति **कान**		आपवत्स **छाती**		अर्यमा **स्तन**		सविता **हाथ**		वितथ **बगल**
भुजग **कंधा**								बृहत्क्षत **बगल**
सोम **भुजा**		पृथ्वीधर **स्तन**		ब्रह्मा **हृदय**		विवस्वान् **पेट**		यम **ऊरु**
भल्लाट **भुजा**								गन्धर्व **घुटना**
मुख्य **भुजा**		राजयक्ष्मा **हाथ**		मित्र **पेट**		इन्द्र **लिंग**		भृंगराज **जंघा**
नाग **भुजा**	रुद्र **हाथ**						जय **लिंग**	मृग **नितंब**
रोग **भुजा**	पापयक्ष्मा **मणिबंध**	शोष **बगल**	असुर **बगल**	वरुण **ऊरु**	पुष्पदंत **घुटना**	सुग्रीव **जंघा**	दौवारिक **नितंब**	पिता **पैर**

उत्तर (बायीं ओर) — दक्षिण (दायीं ओर)

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

अतिमर्म-स्थान

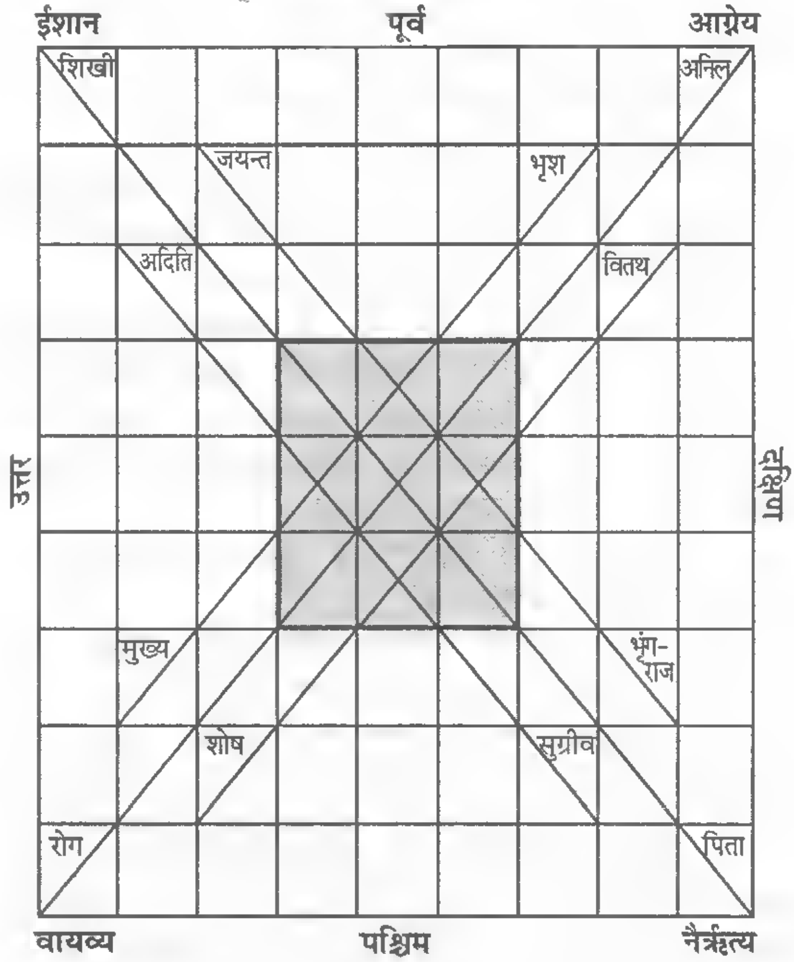
ईशान
पूर्व
आग्नेय
शिखी
अनिल
जयन्त
भृश
अदिति
वितथ
उत्तर
दक्षिण
मुख्य
भृंग-राज
शोष
सुग्रीव
रोग
पिता
वायव्य
पश्चिम
नैर्ऋत्य

दसवाँ अध्याय

गृहनिर्माण-सम्बन्धी आवश्यक बातें

(१) मकान पूर्व व उत्तरमें नीचा और पश्चिम व दक्षिणमें ऊँचा होना चाहिये। ऐसा होनेसे गृहस्वामीकी उन्नति होती है। मत्स्यपुराण (२५६। ४)-में आया है कि दक्षिण दिशामें ऊँचा घर मनुष्यकी सब कामनाओंको पूर्ण करता है।

मकान दक्षिणमें ऊँचा होनेपर धनकी वृद्धि और पश्चिममें नीचा होनेपर धनका नाश होता है।

(२) घरके चारों ओर तथा द्वारके सम्मुख व पीछे कुछ जमीन छोड़ देना शुभकारक है। पिछला भाग दक्षिणावर्त रहना चाहिये; क्योंकि वामावर्त विनाशकारक होता है।

(३) चहारदीवारीसे मिले हुए जो (वास्तुचक्रके) चारों ओरके बत्तीस पद हैं, वे 'पिशाच-पद' अथवा 'पिशाचांश' कहलाते हैं। उनमें घर बनाना दुःख, शोक तथा भय देनेवाला है।

(४) जिस घर, देवालय, मठ आदिमें सूर्य-किरणें और वायु प्रवेश नहीं करती, वह शुभ नहीं होता।

(५) एक दीवारसे मिले हुए दो मकान यमराजके समान गृहस्वामीका नाश करनेवाले हैं।

(६) किसी मार्ग या गलीका अन्तिम मकान (जहाँ आगे मार्ग न हो) अशुभ है। ऐसा मकान कष्ट देनेवाला है।

(७) पूर्वसे पश्चिमकी ओर लम्बा मकान 'सूर्यवेधी' और उत्तरसे दक्षिणकी ओर लम्बा मकान 'चन्द्रवेधी' होता है। चन्द्रवेधी मकान शुभ होता है, जिसमें धनकी वृद्धि होती है। जलाशय सूर्यवेधी शुभ होता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि चौकोर शिविर भी चन्द्रवेधी होनेपर मंगलप्रद होता है; परन्तु मंगलप्रद शिविर भी सूर्यवेधी होनेपर अमंगलकारक हो जाता है। इसी प्रकार सूर्यवेधी आँगन भी अमंगलकारक होता है। (कृष्णजन्म० १०३। ६०-६१)

(८) मकानके कुछ भागमें मिट्टी अवश्य रहनी चाहिये।

(९) धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और

रेवती—इन पाँच नक्षत्रों (पंचक)-में घरके लिये तृण-काष्ठोंका संग्रह, शय्या बनाना, चारपाई आदि बुनना और गृहाच्छादन (घरको छवाना) कदापि नहीं करना चाहिये।

(१०) घरमें टूट-फूट हो जाय तो उसमें रहनेवालोंको कभी सुख नहीं मिलता।

(११) यदि नये घरका द्वार टूट जाय तो उसमें स्त्रीसंज्ञक किसी वस्तुका अथवा स्वयं स्त्रीका नाश होता है। इसी तरह नये घरमें यदि कोई वस्तु टूट जाती है अथवा झुक जाती है या फट जाती है तो कुटुम्बीकी मृत्यु होती है।

(नये घरमें उपर्युक्त शुभाशुभ फल एक वर्षतक समझने चाहिये। एक वर्षके बाद वह घर पुराना कहा जाता है।)

(१२) घरमें टूटे-फूटे आसन (कुर्सी आदि), शयनिका (पलंग आदि) और वाहन (साइकिल, स्कूटर आदि)-का होना भी अशुभ फल देनेवाला है।

महाभारतमें आया है—

भिन्नभाण्डं च खट्वां च कुक्कुटं शुनकं तथा।
अप्रशस्तानि सर्वाणि यश्च वृक्षो गृहेरुहः॥
भिन्नभाण्डे कलिं प्राहुः खट्वायां तु धनक्षयः।
कुक्कुटे शुनके चैव हविर्नाशनन्ति देवताः॥
वृक्षमूले ध्रुवं सत्त्वं तस्माद् वृक्षं न रोपयेत्॥

(महा०, अनुशासन० १२७। १५-१६)

'घरमें टूटे बर्तन, टूटी खाट, मुर्गा, कुत्ता और अश्वत्थादि वृक्षका होना अच्छा नहीं माना गया है। फूटे बर्तनमें कलियुगका वास कहा गया है। टूटी खाट रहनेसे धनकी हानि होती है। मुर्गे और कुत्तेके रहनेपर देवता उस घरमें हविष्य ग्रहण नहीं करते तथा मकानके अन्दर कोई बड़ा वृक्ष होनेपर उसकी जड़के भीतर साँप, बिच्छू आदि जन्तुओंका रहना अनिवार्य हो जाता है। इसलिये घरके भीतर पेड़ न लगाये।'

ग्यारहवाँ अध्याय

गृहका आकार

(१) वास्तुशास्त्रमें चौकोर, आयताकार, भद्रासन और वृत्ताकार—इन चार घरोंको श्रेष्ठ बताया गया है। यद्यपि चौकोर घरको सभी ग्रन्थोंमें उत्तम बताया गया है, तथापि ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने विश्वकर्माके प्रति कहा है—

दीर्घे प्रस्थे समानञ्च न कुर्य्यान्मन्दिरं बुधः।
चतुरस्त्रे गृहे कारो गृहिणां धननाशनम्॥

(श्रीकृष्ण० १०३। ५७)

'बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जिसकी लम्बाई-चौड़ाई समान हो, ऐसा घर न बनाये; क्योंकि चौकोर घरमें वास करना गृहस्थोंके धनका नाशक होता है।'

(२) घरकी परिमित लम्बाई-चौड़ाईमें पृथक्-पृथक् दोका भाग देनेपर यदि शून्य शेष आये तो वह घर मनुष्योंके लिये शून्यप्रद होता है। यदि शून्य शेष न आये तो वह घर शुभ होता है। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण० १०३। ५७-५८)

(३) आयताकार मकानमें चौड़ाईसे दुगुनीसे अधिक लम्बाई नहीं होनी चाहिये। चौड़ाईसे दुगुनी या उससे अधिक लम्बाई गृहस्वामीके लिये विनाशकारक होती है— **'विस्ताराद् द्विगुणं गेहं गृहस्वामिविनाशनम्'**। (विश्वकर्मप्रकाश २। १०९)

(४) चक्रके समान घरमें दरिद्रता आती है।

विषमबाहु घरमें शोक होता है।

शकटके समान घरमें सुख और धनकी हानि होती है।

दण्डके समान घरमें पशुओंकी हानि तथा वंशका नाश होता है।

मृदंगके समान घरमें स्त्रीकी मृत्यु, वंशकी हानि तथा बन्धुनाश होता है।

पंखीके समान घर होनेसे धनका नाश होता है।

कछुएके समान घरमें बन्धन और पीड़ा होती है।

धनुषके समान घरमें चोर आदिका भय होता है। ऐसे घरमें मूर्ख एवं पापी पुत्र पैदा होते हैं।

कुम्भके समान घरमें कुष्ठरोग होता है।

मुद्गरके समान घरमें पुरुषार्थकी हानि होती है।

कुल्हाड़ीके समान घरमें मूर्ख एवं पापी पुत्र उत्पन्न होते हैं।

तीन कोनेवाले घरमें राजभय, पुत्रकी हानि, दुःख, वैधव्य एवं मृत्यु होती है।

पाँच कोनेवाले घरमें सन्तानको कष्ट होता है। यह घर विनाशकारक होता है।

छः कोनेवाले घरमें मृत्यु एवं क्लेश होता है।

सात कोनेवाला घर अशुभ फल देनेवाला होता है।

आठ कोनेवाले घरमें रोग तथा शोक होता है।

छाजके समान घरमें धन एवं गायोंका नाश होता है।

चौड़े मुखवाले घरमें बन्धुओंका नाश होता है।

बारहवाँ अध्याय

धन, ऋण, आय आदिके ज्ञानका उपाय

(१) घरकी चौड़ाईको लम्बाईसे गुणा करनेपर जो गुणनफल आता है, उसे 'पद' कहते हैं। उस पदको (छः स्थानोंमें रखकर) क्रमशः ८, ३, ९, ८, ९, ६ से गुणा करें और गुणनफलमें क्रमशः १२, ८, ८, २७, ७, ९ से भाग दें। फिर जो शेष बचे, वह क्रमशः धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं।

उदाहरणार्थ—घरकी चौड़ाई १५ हाथ और लम्बाई २५ हाथ है। इनको परस्पर गुणा करनेसे गुणनफल ३७५ पद हुआ। अब इसके धन, ऋण आदि इस प्रकार निकाले जायँगे—

$$\textbf{धन} = \frac{३७५ \times ८}{१२} = ० \text{ अर्थात् } १२$$

$$\textbf{ऋण} = \frac{३७५ \times ३}{८} = ५$$

$$\textbf{आय} = \frac{३७५ \times ९}{८} = ७$$

$$\textbf{नक्षत्र} = \frac{३७५ \times ८}{२७} = ३$$

$$\textbf{वार} = \frac{३७५ \times ९}{७} = १$$

$$\textbf{अंश} = \frac{३७५ \times ६}{९} = ० \text{ अर्थात् } ९$$

अब इनका फल इस प्रकार समझना चाहिये—

धन— यदि ऋणकी अपेक्षा धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है।

ऋण— यदि धनकी अपेक्षा ऋण अधिक हो तो वह घर अशुभ होता है।

आय— यह आठ प्रकारकी होती है- १. ध्वज २. धूम्र ३. सिंह ४. श्वान ५. वृष ६. खर ७. गज और ८. उष्ट्र अथवा काक। यदि आय विषम (१, ३, ५, ७) हो तो शुभ होता है और सम (२, ४, ६, ८) हो तो अशुभ होता है।

नक्षत्र— घरका जो नक्षत्र हो, वहाँसे अपने नामके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो, उसमें ९ से भाग दें। यदि शेष ३ बचे तो धनका नाश, ५ बचे तो यशकी हानि और ७ बचे तो गृहकर्ताकी मृत्यु होती है। घरकी राशि और अपनी राशि गिननेपर परस्पर २, १२ हो तो धनकी हानि; ९, ५ हो तो पुत्रकी हानि और ६, ८ हो तो अनिष्ट होता है। अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिये।

वार तथा अंश— सूर्य (१) और मंगल (३) के वार तथा अंश हो तो उस घरमें अग्निभय होता है। अन्य वार तथा अंश होनेसे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

उपर्युक्त उदाहरणमें सब वस्तुएँ शुभ हैं, केवल वार १ (रवि) अशुभ है, जिससे घरमें अग्निभय रहेगा।

(२) घरकी लम्बाई-चौड़ाईके गुणनफल (पद)-को आठसे गुणा करे, फिर १२० से भाग दे तो घरकी आयुका ज्ञान होता है।

(३) घर और गृहस्वामीका एक नक्षत्र हो तो गृहस्वामीकी मृत्यु होती है।

(४) ध्वज आयमें गृहारम्भ करनेपर अधिक धन तथा कीर्ति मिलती है।

धूम्र आयमें गृहारम्भ करनेपर भ्रम तथा शोक होता है।

सिंह आयमें गृहारम्भ करनेपर विशेष लक्ष्मी तथा विजय प्राप्त होती है।

श्वान आयमें गृहारम्भ करनेपर कलह व वैर होता है।

वृष आयमें गृहारम्भ करनेपर धन-धान्यका लाभ होता है।

खर आयमें गृहारम्भ करनेपर स्त्रीनाश तथा निर्धनता होती है।

गज आयमें गृहारम्भ करनेपर पुत्रलाभ तथा सुख होता है।

उष्ट्र आयमें गृहारम्भ करनेपर शून्यता तथा रोग होता है।

(५) 'ध्वज' आय हो तो सब दिशाओंमें, 'सिंह' आय हो तो पूर्व, दक्षिण, उत्तर दिशाओंमें, 'वृष' आय हो तो पश्चिम दिशामें और 'गज' आय हो तो पूर्व और दक्षिण दिशामें मुख्य द्वार बनाना उत्तम होता है।

(६) ब्राह्मणके लिये 'ध्वज' आय और पश्चिममें द्वार बनाना उत्तम है। क्षत्रियके लिये 'सिंह' आय और उत्तरमें द्वार बनाना उत्तम है। वैश्यके लिये 'वृष' आय और पूर्वमें द्वार बनाना उत्तम है। शूद्रके लिये 'गज' आय और दक्षिणमें द्वार बनाना उत्तम है।

(७) जिस मकानकी लम्बाई बत्तीस हाथसे अधिक हो, उसमें आय आदिका विचार नहीं करना चाहिये।

तेरहवाँ अध्याय

गृहके आकारमें परिवर्तन

(१) घरके किसी अंशको आगे नहीं बढ़ाना चाहिये। यदि बढ़ाना हो तो सभी दिशाओंमें समानरूपसे बढ़ाना चाहिये।

घरको **पूर्व** दिशामें बढ़ानेपर मित्रोंसे वैर होता है।

दक्षिण दिशामें बढ़ानेपर मृत्युका तथा शत्रुका भय होता है।

पश्चिम दिशामें बढ़ानेपर धनका नाश होता है।

उत्तर दिशामें बढ़ानेपर मानसिक सन्तापकी वृद्धि होती है।

आग्नेय दिशामें बढ़ानेपर अग्निसे भय होता है।

नैर्ऋत्य दिशामें बढ़ानेपर शिशुओंका नाश होता है।

वायव्य दिशामें बढ़ानेपर वात-व्याधि उत्पन्न होती है।

ईशान दिशामें बढ़ानेपर अन्नकी हानि होती है।

(२) यदि घरके किसी अंशको आगे बढ़ाना अनिवार्य हो तो पूर्व या उत्तरकी तरफ बढ़ा सकते हैं; क्योंकि इसमें थोड़ा दोष है।

चौदहवाँ अध्याय

गृह-निर्माणकी सामग्री

(१) ईंट, लोहा, पत्थर, मिट्टी और लकड़ी—ये नये मकानमें नये ही लगाने चाहिये।

(२) नये मकानमें पुरानी लकड़ी नहीं लगानी चाहिये। एक मकानमें उपयोग की गयी लकड़ी दूसरे मकानमें लगानेसे सम्पत्तिका नाश एवं अशान्तिकी प्राप्ति होती है। ऐसे मकानमें गृहस्वामी रह नहीं पाता, यदि रहता है तो उसकी मृत्यु होती है।

(३) मकानमें एक, दो या तीन जातिकी लकड़ी लगानी चाहिये। एक जातिकी लकड़ी उत्तम, दो जातिकी मध्यम और तीन जातिकी अधम होती है।

(४) एक, दो या तीन प्रकारके काष्ठोंसे बनाया घर शुभ होता है। इससे अधिक प्रकारके काष्ठोंसे बनाया घर अनेक भय देनेवाला होता है।

(५) नया द्वार पुराने द्वारसे संयुक्त होनेपर दूसरे स्वामीकी इच्छा करता है। नया द्रव्य पुराने द्रव्यसे संयुक्त होनेपर कलिकारक (कलह करानेवाला) होता है। मिश्रजातिके द्रव्यसे निर्मित द्वार या घर अशुभ होता है।

एक वास्तुसे निकाला गया द्रव्य दूसरे वास्तुमें प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेपर देवमन्दिरमें पूजा नहीं होती और गृहमें गृहस्वामी नहीं बस पाता।

देव-दग्ध (अग्निसे जले) द्रव्यसे जो भवन बनाया जाता है, उसमें गृहस्वामी निवास नहीं कर पाता और यदि निवास करता है तो नाशको प्राप्त होता है। (समरांगणसूत्रधार ३८। ६०—६४)

(६) **त्याज्य वृक्ष**—दूधवाले, काँटेवाले, पुष्पोंवाले, रस बहानेवाले, पक्षियोंके घोंसलेवाले, उल्लुओंके वास, मांसाहारी पक्षियोंसे दूषित, मधुमक्खियोंके छत्तेसे युक्त, सर्पके वास, चींटियोंसे आच्छादित, मकड़ीके जालोंसे ढके, भूत-प्रेतोंके वास, दीमक लगे हुए, गाँठोंसे युक्त, कोटरवाले, गड्ढेसे ढके हुए, रोगोंसे युक्त, जिनका आधा भाग सूख गया हो या टूट गया हो, एक-दो शाखावाले, बिजली और आँधीसे गिरे हुए, जले हुए, हाथी आदि जानवरोंसे रौंदे हुए, समाधि-स्थलमें लगे हुए, देवमन्दिरमें लगे हुए, आश्रममें लगे हुए, नदियोंके संगमपर स्थित, श्मशानभूमिमें लगे हुए, जलाशय (तालाब आदि)-पर लगे हुए, खेतमें लगे हुए, चौराहे, तिराहे या मार्गपर लगे हुए—इन वृक्षोंकी लकड़ी गृहनिर्माणके काममें नहीं लेनी चाहिये।

(७) पीपल, कदम्ब, नीम, बहेड़ा, आम, पाकर, गूलर, सेहुड़, वट, रीठा, लिसोड़ा, कैथ, इमली, सहिजन, ताल, शिरीष, कोविदार, बबूल और सेमल—इन वृक्षोंकी लकड़ी अशुभ फल देनेवाली है।

(८) **ग्राह्य वृक्ष**—अशोक, महुआ, साखू, असना, चन्दन, देवदारु, शीशम, श्रीपर्णी, तिन्दुकी, कटहल, खदिर, अर्जुन, शाल और शमी—इन वृक्षोंकी लकड़ी शुभ फल देनेवाली है।

(९) धनदायक शीशम, श्रीपर्णी तथा तिन्दुकीके काष्ठको अकेले ही लगायें। अन्य किसी काष्ठके साथ सम्मिलित करनेपर ये मंगलकारी नहीं होते। इसी तरह धव, कटहल, चीड़, अर्जुन, पद्म वृक्ष भी अन्य काष्ठोंके साथ सम्मिलित होनेपर गृहकार्यके लिये शुभदायक नहीं होते।

(१०) शहतीर, चौखट, दरवाजे-खिड़कियाँ, खूँटी, फर्नीचर

आदिके निर्माणमें निषिद्ध (त्याज्य) वृक्षोंकी लकड़ी काममें नहीं लेनी चाहिये।

(११) शय्या (पलंग)-के निर्माणमें श्रीपर्णी धनदायक, आसन रोगनाशक, शीशम वृद्धिकारक, सागवान कल्याणकारक, पद्मक आयुप्रद, चन्दन शत्रुनाशक एवं सुखदायक और शिरीष श्रेष्ठ है।

(१२) काष्ठको कृष्णपक्षमें काटना चाहिये। शुक्लपक्षमें नहीं काटना चाहिये।

(१३) जिस वृक्षको काटना हो, उसके निमित्त रातमें पूजा और बलि (नैवेद्य) देकर प्रातः ईशानकोणसे प्रदक्षिण-क्रमसे उसको काटे। यदि वृक्ष कटकर पूर्व, उत्तर या ईशानमें गिरे तो शुभ है, अन्य दिशामें गिरे तो अशुभ है।

(१४) वृक्ष कटनेपर यदि पूर्व दिशामें गिरे तो धन-धान्यकी वृद्धि होती है। आग्नेयमें गिरे तो अग्निभय, दक्षिणमें गिरे तो मृत्यु, नैर्ऋत्यमें गिरे तो कलह, पश्चिममें गिरे तो पशुवृद्धि, वायव्यमें गिरे तो चोर-भय, उत्तरमें गिरे तो धनकी प्राप्ति और ईशानमें गिरे तो अतिश्रेष्ठ फल प्राप्त होता है।

(१५) **पत्थरका प्रयोग**—वर्तमानमें घरोंमें पत्थरका प्रयोग अधिक किया जाने लगा है; परन्तु वास्तुशास्त्रमें इसका प्रयोग निषिद्ध है। उदाहरणार्थ—

पाषाणतः सौख्यकरा नृपाणां धनक्षयं सोऽपि करोति गेहे॥

(वास्तुराज० ९। १३)

'पाषाण-पट्ट (पत्थरके पटरे) राजाओंके महलमें सुखदायी होते हैं, पर दूसरेके घरमें धनका नाश करते हैं।'

प्रासादे च मठे नरेन्द्रभवने शैलः शुभो नो गृहे।
तस्मिन् भित्तिषु बाह्यकासु शुभदः प्राग्भूमिकुम्भ्यां तथा॥

(वास्तुराज० ५। ३६)

'मन्दिर, राजमहल और मठमें पत्थर शुभदायक है, पर साधारण घरमें पत्थर शुभ नहीं है। परन्तु दीवारसे बाहर लगानेमें हानि नहीं।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णके वचन हैं—

वृक्षश्च वज्रहस्तश्च भूधरो वर्जयेद् बुधः॥
पुत्रदारधनं हन्यादित्याह कमलोद्भवः।

(श्रीकृष्णजन्म० १०३। ७२-७३)

'बुद्धिमान् पुरुषको लकड़ी, वज्रहस्त तथा शिलाका उपयोग न करना ही उचित है; क्योंकि ये स्त्री, पुत्र और धनका नाश करनेवाले होते हैं—ऐसा कमलजन्मा ब्रह्माका कथन है।'

पन्द्रहवाँ अध्याय

गृहके समीपस्थ वृक्ष

(१) अशोक, पुन्नाग, मौलसिरी, शमी, चम्पा, अर्जुन, कटहल, केतकी, चमेली, पाटल, नारियल, नागकेशर, अड़हुल, महुआ, वट, सेमल, बकुल, शाल आदि वृक्ष घरके पास शुभ हैं।

पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा, पीपल, कपित्थ, अगस्त्य, बेर, निर्गुण्डी, इमली, कदम्ब, केला, नींबू, अनार, खजूर, बेल आदि वृक्ष घरके पास अशुभ हैं।

(२) कई वृक्ष ऐसे हैं, जो दिशाविशेषमें स्थित होनेपर शुभ अथवा अशुभ फल देनेवाले हो जाते हैं; जैसे—

पूर्वमें पीपल भय तथा निर्धनता देता है। परन्तु बरगद कामना-पूर्ति करता है।

आग्नेयमें वट, पीपल, सेमल, पाकर तथा गूलर पीड़ा और मृत्यु देनेवाले हैं। परन्तु अनार शुभ है।

दक्षिणमें पाकर रोग तथा पराजय देनेवाला है, और आम, कैथ, अगस्त्य तथा निर्गुण्डी धननाश करनेवाले हैं। परन्तु गूलर शुभ है।

नैर्ऋत्यमें इमली शुभ है।

दक्षिण-नैर्ऋत्यमें जामुन और कदम्ब शुभ हैं।

पश्चिममें वट होनेसे राजपीड़ा, स्त्रीनाश व कुलनाश होता है, और आम, कैथ अगस्त्य तथा निर्गुण्डी धननाशक हैं। परन्तु पीपल शुभदायक है।

वायव्यमें बेल शुभदायक है।

उत्तरमें गूलर नेत्ररोग तथा ह्रास करनेवाला है। परन्तु पाकर शुभ है।

ईशानमें आँवला शुभदायक है।

ईशान-पूर्वमें कटहल एवं आम शुभदायक हैं।

(३) घरके पास काँटेवाले, दूधवाले तथा फलवाले वृक्ष स्त्री और सन्तानकी हानि करनेवाले हैं। यदि इन्हें काटा न जा सके तो इनके पास शुभ वृक्ष लगा दें।

काँटेवाले वृक्ष शत्रुसे भय देनेवाले, दूधवाले वृक्ष धनका नाश करनेवाले और फलवाले वृक्ष सन्तानका नाश करनेवाले हैं। इनकी लकड़ी भी घरमें नहीं लगानी चाहिये—

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम्॥

(बृहत्संहिता ५३। ८६)

(४) **बदरी कदली चैव दाडिमी बीजपूरिका।**
प्ररोहन्ति गृहे यत्र तद्गृहं न प्ररोहति॥

(समरांगणसूत्रधार ३८। १३१)

'बेर, केला, अनार तथा नींबू जिस घरमें उगते हैं, उस घरकी वृद्धि नहीं होती।'

अश्वत्थं च कदम्बं च कदलीबीजपूरकम्।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति॥

(बृहद्दैवज्ञ० ८७। ९)

'पीपल, कदम्ब, केला, बीजू नींबू—ये जिस घरमें होते हैं, उसमें रहनेवालेकी वंशवृद्धि नहीं होती।'

(५) घरके भीतर लगायी हुई तुलसी मनुष्योंके लिये कल्याणकारिणी, धन-पुत्र प्रदान करनेवाली, पुण्यदायिनी तथा हरिभक्ति देनेवाली होती है। प्रातःकाल तुलसीका दर्शन करनेसे सुवर्ण-दानका फल प्राप्त होता है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण० १०३। ६२-६३)

अपने घरसे दक्षिणकी ओर तुलसीवृक्षका रोपण नहीं करना चाहिये, अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ती है। (भविष्यपुराण म० १)

(६) **मालतीं मल्लिकां मोचां चिञ्चां श्वेतां पराजिताम्।**
वास्तुन्यां रोपयेद्यस्तु स शस्त्रेण निहन्यते॥

(वास्तुसौख्यम् ३९)

'मालती, मल्लिका, मोचा (कपास), इमली, श्वेता (विष्णुक्रान्ता) और अपराजिताको जो वास्तुभूमिपर लगाता है, वह शस्त्रसे मारा जाता है।'

(७) **वाटिका (बगीचा)**—जो घरसे पूर्व, उत्तर, पश्चिम या ईशान दिशामें वाटिका बनाता है, वह सदा गायत्रीसे युक्त, दान देनेवाला और यज्ञ करनेवाला होता है। परन्तु जो आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य या वायव्यमें वाटिका बनाता है, उसे धन और पुत्रकी हानि तथा परलोकमें अपकीर्ति प्राप्त होती है। वह मृत्युको प्राप्त होता है। वह जातिभ्रष्ट व दुराचारी होता है।

(८) यदि घरके समीप अशुभ वृक्ष लगे हों और उनको काटनेमें कठिनाई हो तो अशुभ वृक्ष और घरके बीचमें शुभ फल देनेवाले वृक्ष लगा देने चाहिये। यदि पीपलका वृक्ष घरके पास हो तो उसकी सेवा-पूजा करते रहना चाहिये।

(९) दिनके दूसरे और तीसरे पहर यदि किसी वृक्ष, मन्दिर आदिकी छाया मकानपर पड़े तो वह सदा दुःख व रोग देनेवाली होती है।

(सूर्योदयसे लेकर तीन-तीन घण्टेका एक पहर होता है।)

सोलहवाँ अध्याय

गृहके समीपस्थ शुभाशुभ वस्तुएँ

(१) घरके समीप सचिवालय हो तो धनकी हानि, धूर्तका घर हो तो पुत्रनाश, मन्दिर हो तो उद्वेग (अशान्ति), चौराहा हो तो अपयश, चैत्य वृक्ष हो तो भय, दीमक व पोली जमीन हो तो विपत्ति, गड्ढा हो तो पिपासा और कूर्माकार जमीन हो तो धननाश होता है।

(२) देवालय, धूर्त, सचिव या चौराहेके समीप घर बनानेसे दु:ख, शोक तथा भय बना रहता है।

(३) भविष्यपुराणमें आया है—नगरके द्वार, चौक, यज्ञशाला, शिल्पियोंके रहनेके स्थान, जुआ खेलने तथा मद्य-मांसादि बेचनेके स्थान, पाखण्डियोंके रहनेके स्थान, राजाके नौकरोंके रहनेके स्थान, देवमन्दिरके मार्ग, राजमार्ग और राजाके महल—इन स्थानोंसे दूर घर बनाना चाहिये। स्वच्छ, मुख्य मार्गवाला, उत्तम व्यवहारवाले लोगोंसे आवृत तथा दुष्टोंके निवाससे दूर स्थानपर गृहका निर्माण करना चाहिये।

(४) घरके पूर्वमें विवर या गड्ढा, दक्षिणमें मठ-मन्दिर, पश्चिममें कमलयुक्त जल और उत्तरमें खाई हो तो शत्रुसे भय होता है।

सत्रहवाँ अध्याय

मुख्य द्वार

(१) वास्तुचक्रकी चारों दिशाओंमें कुल बत्तीस देवता स्थित हैं। किस देवताके स्थानमें मुख्य द्वार बनानेसे क्या शुभाशुभ फल होता है, इसे बताया जाता है—

पूर्व

१. शिखी—इस स्थानपर द्वार बनानेसे दुःख, हानि और अग्निसे भय होता है।

२. पर्जन्य—इस स्थानपर द्वार बनानेसे परिवारमें कन्याओंकी वृद्धि, निर्धनता तथा शोक होता है।

३. जयन्त—इस स्थानपर द्वार बनानेसे धनकी प्राप्ति होती है।

४. इन्द्र—इस स्थानपर द्वार बनानेसे राज-सम्मान प्राप्त होता है।

५. सूर्य—इस स्थानपर द्वार बनानेसे धन प्राप्त होता है।

(मतान्तरसे इस स्थानपर द्वार बनानेसे क्रोधकी अधिकता होती है।)

६. सत्य—इस स्थानपर द्वार बनानेसे चोरी, कन्याओंका जन्म तथा असत्यभाषणकी अधिकता होती है।

७. भृश—इस स्थानपर द्वार बनानेसे क्रूरता, अति क्रोध तथा अपुत्रता होती है।

८. अन्तरिक्ष—इस स्थानपर द्वार बनानेसे चोरीका भय तथा हानि होती है।

दक्षिण

९. अनिल—इस स्थानपर द्वार बनानेसे सन्तानकी कमी तथा मृत्यु होती है।

१०. पूषा—इस स्थानपर द्वार बनानेसे दासत्व तथा बन्धनकी प्राप्ति होती है।

११. वितथ—इस स्थानपर द्वार बनानेसे नीचता तथा भयकी प्राप्ति होती है।

१२. बृहत्क्षत—इस स्थानपर द्वार बनानेसे धन तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है।

१३. यम—इस स्थानपर द्वार बनानेसे धनकी वृद्धि होती है।

(मतान्तरसे इस स्थानपर द्वार बनानेसे भयंकरता होती है।)

१४. गन्धर्व—इस स्थानपर द्वार बनानेसे निर्भयता तथा यशकी प्राप्ति होती है।

(मतान्तरसे इस स्थानपर द्वार बनानेसे कृतघ्नता होती है।)

१५. भृंगराज—इस स्थानपर द्वार बनानेसे निर्धनता, चोरभय तथा व्याधिभय प्राप्त होता है।

१६. मृग—इस स्थानपर द्वार बनानेसे पुत्रके बलका नाश, निर्बलता तथा रोगभय होता है।

पश्चिम

१७. पिता—इस स्थानपर द्वार बनानेसे पुत्रहानि, निर्धनता तथा शत्रुओंकी वृद्धि होती है।

१८. दौवारिक—इस स्थानपर द्वार बनानेसे स्त्रीदु:ख तथा शत्रुवृद्धि होती है।

१९. सुग्रीव—इस स्थानपर द्वार बनानेसे लक्ष्मीप्राप्ति होती है।

२०. पुष्पदन्त—इस स्थानपर द्वार बनानेसे पुत्र तथा धनकी प्राप्ति होती है।

२१. वरुण—इस स्थानपर द्वार बनानेसे धन तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

२२. असुर—इस स्थानपर द्वार बनानेसे राजभय तथा दुर्भाग्य प्राप्त होता है।

(मतान्तरसे इस स्थानपर द्वार बनानेसे धनलाभ होता है।)

२३. शोष—इस स्थानपर द्वार बनानेसे धनका नाश एवं दुःखोंकी प्राप्ति होती है।

२४. पापयक्ष्मा—इस स्थानपर द्वार बनानेसे रोग तथा शोककी प्राप्ति होती है।

उत्तर

२५. रोग—इस स्थानपर द्वार बनानेसे मृत्यु, बन्धन, स्त्रीहानि, शत्रुवृद्धि तथा निर्धनता होती है।

२६. नाग—इस स्थानपर द्वार बनानेसे शत्रुवृद्धि, निर्बलता, दुःख तथा स्त्रीदोष होता है।

२७. मुख्य—इस स्थानपर द्वार बनानेसे हानि होती है।

(मतान्तरसे इस स्थानपर द्वार बनानेसे पुत्र-धन-लाभ होता है।)

२८. भल्लाट—इस स्थानपर द्वार बनानेसे धन-धान्य तथा सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है।

२९. सोम—इस स्थानपर द्वार बनानेसे पुत्र, धन तथा सुखकी प्राप्ति होती है।

३०. भुजग—इस स्थानपर द्वार बनानेसे पुत्रोंसे शत्रुता तथा दुःखोंकी प्राप्ति होती है।

(मतान्तरसे इस स्थानपर द्वार बनानेसे सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है।)

३१. अदिति—इस स्थानपर द्वार बनानेसे स्त्रियोंमें दोष, शत्रुओंसे बाधा तथा भय एवं शोककी प्राप्ति होती है।

३२. दिति—इस स्थानपर द्वार बनानेसे निर्धनता, रोग, दुःख तथा विघ्न-बाधा होती है।

मुख्य द्वारका स्थान

ईशान पूर्व आग्नेय

उत्तर दक्षिण

शिखी	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	अंतरिक्ष	अनिल
दिति								पूषा
अदिति								वितथ
भुजग								बृहत्क्षत
सोम								यम
भल्लाट								गन्धर्व
मुख्य								भृंगराज
नाग								मृग
रोग	पापयक्ष्मा	शोष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	दौवारिक	पिता

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

मुख्य द्वारकी ठीक स्थिति जाननेकी अन्य विधियाँ इस प्रकार हैं—

(क) जिस दिशामें द्वार बनाना हो, उस ओर मकानकी लम्बाईको बराबर नौ भागोंमें बाँटकर पाँच भाग दायें और तीन भाग बायें छोड़कर शेष (बायीं ओरसे चौथे) भागमें द्वार बनाना चाहिये।

दायाँ और बायाँ भाग उसको मानना चाहिये, जो घरसे बाहर निकलते समय हो।

(ख) शुक्रनीतिमें आया है कि मकानकी लम्बाईके आठ भाग करके बीचके दो भागोंमें द्वार बनाना चाहिये। ऐसा द्वार धन तथा पुत्र देनेवाला होता है (शुक्रनीति १। २३१)।

(ग) घरकी लम्बाईके नौ भाग करके पूर्व दिशामें घरकी बायीं ओरसे तीसरे भागमें, दक्षिण दिशामें छठे भागमें, पश्चिम दिशामें पाँचवें भागमें और उत्तर दिशामें पाँचवें भागमें द्वार बनाना चाहिये (मुहूर्त्तमार्त्तण्ड ६। १७)।

(२) उत्संग द्वार—यदि बाहरी और भीतरी द्वार एक ही दिशामें हों अर्थात् घरका द्वार बाहरी प्रवेश द्वारके सम्मुख हो तो उसे 'उत्संग द्वार' कहते हैं। उत्संग द्वारसे सौभाग्यकी वृद्धि, सन्तानकी वृद्धि, विजय तथा धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।

सव्य द्वार—यदि बाहरी द्वारसे प्रवेश करनेके बाद भीतरी (दूसरा) द्वार दायीं तरफ पड़े तो उसे 'सव्य द्वार' कहते हैं। सव्य द्वारसे सुख, धन-धान्य तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि होती है।

अपसव्य द्वार—यदि बाहरी द्वारसे प्रवेश करनेके बाद भीतरी द्वार बायीं तरफ पड़े तो उसे 'अपसव्य द्वार' कहते हैं। अपसव्य द्वारसे धनकी कमी, बन्धु-बान्धवोंकी कमी, स्त्रीकी दासता तथा अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

वास्तुशास्त्रकी दृष्टिसे अपसव्य (वामावर्त) सदा विनाशकारक और सव्य (दक्षिणावर्त या प्रदक्षिण-क्रम) सदा कल्याणकारक होता है—

विनाशहेतुः कथितोऽपसव्यः सव्यः प्रशस्तो भवनेऽखिलेऽसौ॥

(वास्तुराज० १। ३१)

'सव्यावर्तः प्रशस्यते', 'अपसव्यो विनाशाय'

(मत्स्यपुराण २५६। ३-४)

पृष्ठभंग द्वार—यदि भीतरी द्वार बाहरी द्वारसे विपरीत दिशामें हो अर्थात् घरके पीछेसे प्रवेश हो तो उसे पृष्ठभंग द्वार कहते हैं। इसका वही अशुभ फल होता है, जो अपसव्य द्वारका होता है।

(३) मुख्य द्वारकी चौखट पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी और नवमीको लगानी चाहिये। प्रतिपदाको लगानेसे दुःखकी प्राप्ति, द्वितीयाको लगानेसे धन, पशु व पुत्रका विनाश, तृतीयाको लगानेसे रोग, चतुर्थीको लगानेसे विघ्न एवं विनाश, पञ्चमीको लगानेसे धनलाभ, षष्ठीको लगानेसे कुलनाश, सप्तमी, अष्टमी और नवमीको लगानेसे शुभ फलकी प्राप्ति, दशमीको लगानेसे धननाश और पूर्णिमा व अमावस्याको लगानेसे वैर उत्पन्न होता है।

(४) कुम्भ राशिका सूर्य रहते फाल्गुनमासमें घर बनाये, कर्क व सिंह राशिका सूर्य रहते श्रावणमासमें घर बनाये और मकर राशिका सूर्य रहते पौषमासमें घर बनाये—ऐसे समय 'पूर्व' या 'पश्चिम' में द्वार शुभ होता है।

मेष व वृष राशिका सूर्य रहते वैशाखमासमें घर बनाये, और तुला व वृश्चिक राशिका सूर्य रहते मार्गशीर्षमासमें घर बनाये—ऐसे समय 'उत्तर' या 'दक्षिण' में द्वार शुभ होता है।

उपर्युक्त विधिके अनुसार न करनेसे रोग, शोक और धननाश होता है।

(५) पूर्णिमासे कृष्णपक्षकी अष्टमीपर्यन्त 'पूर्व' में द्वार नहीं बनाना चाहिये। कृष्णपक्षकी नवमीसे चतुर्दशीपर्यन्त 'उत्तर' में द्वार नहीं बनाना चाहिये। अमावस्यासे शुक्लपक्षकी अष्टमीपर्यन्त 'पश्चिम' में द्वार नहीं बनाना चाहिये। शुक्लपक्षकी नवमीसे शुक्लपक्षकी चतुर्दशीपर्यन्त 'दक्षिण' में द्वार नहीं बनाना चाहिये।

तात्पर्य है कि कृष्ण ९ से शुक्ल १४ पर्यन्त 'पूर्व' में द्वार

बनाये, अमावस्यासे कृष्ण ८ पर्यन्त 'दक्षिण'में द्वार बनाये, शुक्ल ९ से कृष्ण १४ पर्यन्त 'पश्चिम' में द्वार बनाये, और पूर्णिमासे शुक्ल ८ पर्यन्त 'उत्तर' में द्वार बनाये।

(६) भाद्रपद आदि तीन-तीन मासोंमें क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंकी ओर मस्तक करके बायीं करवटसे सोया हुआ महासर्पस्वरूप 'चर' नामक पुरुष प्रदक्षिण-क्रमसे विचरण करता रहता है*। जिस समय जिस दिशामें उस पुरुषका मस्तक हो, उस समय उसी दिशामें घरका दरवाजा बनाना चाहिये। मुखसे विपरीत दिशामें दरवाजा बनानेसे दुःख, रोग, शोक तथा भय होते हैं। यदि घरकी चारों दिशाओंमें दरवाजा हो तो यह दोष नहीं लगता।

(७) ब्राह्मण राशि (कर्क, वृश्चिक, मीन)-वालोंके लिये 'पूर्व' में द्वार बनाना उत्तम है। क्षत्रिय राशि (मेष, सिंह, धनु)-वालोंके लिये 'उत्तर' में द्वार बनाना उत्तम है। वैश्य राशि (वृष, कन्या, मकर)-वालोंके लिये 'दक्षिण' में द्वार बनाना उत्तम है। शूद्र राशि (मिथुन, तुला, कुम्भ)-वालोंके लिये 'पश्चिम' में द्वार बनाना उत्तम है।

(८) सामान्यरूपसे पूर्वादि दिशाओंमें स्थापित मुख्य द्वारका फल इस प्रकार है†—

पूर्वमें स्थित द्वार 'विजयद्वार' कहलाता है, जो सर्वत्र विजय करनेवाला, सुखदायक एवं शुभ फल देनेवाला है।

---

* भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक—पूर्व।
मार्गशीर्ष, पौष, माघ—दक्षिण।
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख—पश्चिम।
ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण—उत्तर।

† घरसे बाहर निकलते हुए सामने जो दिशा हो, वही दिशा द्वारकी मानी जाती है।

दक्षिणमें स्थित द्वार 'यमद्वार' कहलाता है, जो संघर्ष करानेवाला तथा विशेषरूपसे स्त्रियोंके लिये दुःखदायी है।

पश्चिममें स्थित द्वार 'मकरद्वार' कहलाता है, जो आलस्यप्रद तथा विशेष प्रयत्न करनेपर सिद्धि देनेवाला है।

उत्तरमें स्थित द्वार 'कुबेरद्वार' कहलाता है, जो सुख-समृद्धि देनेवाला तथा शुभ फल देनेवाला है।

(९) मुख्य द्वारका अन्य द्वारोंसे निकृष्ट होना बहुत बड़ा दोष है। मुख्य द्वारकी अपेक्षा अन्य द्वारोंका बड़ा होना अशुभ है।

(१०) द्वारकी चौड़ाईसे दुगुनी द्वारकी ऊँचाई होनी चाहिये।

(११) त्रिकोण द्वार होनेसे स्त्रीको पीड़ा होती है। शकटाकार द्वार होनेसे गृहस्वामीको भय होता है। सूपाकार द्वार होनेसे धनका नाश होता है। धनुषाकार द्वार होनेसे कलह होती है। मृदङ्गाकार द्वार होनेसे धनका नाश होता है। वृत्ताकार (गोल) द्वार होनेसे कन्या-जन्म होता है।

(१२) यदि द्वार घरके भीतर झुका हो तो गृहस्वामीकी मृत्यु होती है। यदि द्वार घरके बाहर झुका हो तो गृहस्वामीका विदेशवास होता है। यदि द्वार ऊपरके भागमें आगे झुका हो तो वह सन्ताननाशक होता है। द्वार (किवाड़)-में छिद्र होनेसे क्षय होता है।

द्वारके टेढ़े होनेपर कुलको पीड़ा, बाहर निकल जानेपर पराभव, आध्मात (फूला हुआ) होनेपर अत्यन्त दरिद्रता और मध्यभागमें कृश होनेपर रोग होता है।

द्वारके फूले हुए होनेपर क्षुधाका भय तथा टेढ़े होनेपर कुलनाश होता है। टूटा हुआ द्वार पीड़ा करनेवाला, झुका हुआ द्वार क्षय करनेवाला, बाहर झुका हुआ द्वार प्रवासकारक और

दिग्भ्रान्त द्वार डाकुओंसे भय देनेवाला होता है।

निम्न द्वारसे गृहस्वामी स्त्रीजित् होता है। उन्नत द्वारसे दुर्जनकी स्थिति होती है। सम्मुख द्वारसे सुतपीड़ा होती है। पृष्ठाभिमुख द्वारसे स्त्रियोंकी चपलता होती है। वामावर्त द्वारसे धननाश होता है। अग्रतर द्वारसे प्रभुताका नाश होता है।

(समराङ्गण० ३८। ६७—६९)

(१३) द्वारका अपने-आप खुलना या बन्द होना भयदायक है। द्वारके अपने-आप खुलनेसे उन्माद (पागलपन) होता है और अपने-आप बन्द होनेसे कुलका विनाश होता है।

अपने-आप खुलनेवाला द्वार उच्चाटनकारी होता है। वह धनक्षय, बन्धुओंसे वैर या कलह करनेवाला होता है। अपने-आप बन्द होनेवाला द्वार बड़ा दुःखदायी होता है। आवाजके साथ बन्द होनेवाला द्वार भयकारक और गर्भपात करनेवाला होता है।

(१४) दूसरे घरके पिछले भागपर स्थित द्वारवाला घर दोनों गृहस्वामियोंमें परस्पर विरोध उत्पन्न करता है।

(१५) मुख्य द्वार ईशानमें होनेसे धनकी प्राप्ति तो होती है, पर सन्तानके लिये यह शुभ नहीं है। पिता-पुत्रमें तनाव, खटपट भी रहती है।

(१६) अधिकतर दक्षिण दिशावाले मकान ही बेचे जाते हैं।

(१७) वायव्य दिशावाले मकानमें गृहस्वामी बहुत कम रह पाता है।

अठारहवाँ अध्याय

गृहके विविध उपकरण

दरवाजे—

(१) घरके द्वार परिमाणसे अधिक ऊँचे होनेपर राजभय तथा रोग होता है, और अधिक नीचे होनेपर चोरभय, दुःख तथा धनकी हानि होती है। द्वारके ऊपर द्वार यमराजका मुख कहलाता है।

(२) एक दरवाजेके ऊपर यदि दूसरा दरवाजा बनाना हो तो उसे नीचेके दरवाजेकी अपेक्षा छोटा बनाना चाहिये।

सभी दरवाजोंका शीर्ष एक सीधमें होना उत्तम है।

(३) नीचेके द्वारसे ऊपरका द्वार द्वादशांश छोटा होना चाहिये। नीचेके महलसे ऊपरके महलकी ऊँचाई द्वादशांश कम होनी चाहिये।

(४) जिस घरके आगे और पीछेकी दोनों दीवारोंके दरवाजे आपसमें विद्ध होते हैं, वह गृहस्वामीके लिये अशुभ फल देनेवाला होता है। वहाँपर स्थापित किसी भी वस्तुकी वृद्धि नहीं होती।

(५) घरके मध्यभागमें द्वार नहीं बनाना चाहिये। मध्यमें द्वार बनानेसे कुलका नाश, धन-धान्यका नाश, स्त्रीके लिये दोष तथा लड़ाई-झगड़ा होता है।

(६) द्वारके ऊपर द्वार और द्वारके सामने (आमने-सामने)-का द्वार व्यय करनेवाला और दरिद्रताकारक होता है।

सीढ़ियाँ—

सीढ़ीके ऊपरका दरवाजा पूर्व या दक्षिणकी ओर शुभदायक होता है। सीढ़ी मकानके पश्चिम या उत्तर भागमें होनी चाहिये।

दक्षिणावर्ती सीढ़ियाँ शुभ होती हैं।

सीढ़ियाँ (पग), खम्भे, शहतीर, दरवाजे, खिड़कियाँ आदिकी कुल संख्याको तीनसे भाग देनेपर यदि एक शेष बचे तो 'इन्द्र', दो शेष बचे तो 'काल' (यम) और तीन शेष बचे तो 'राजा' संज्ञा होती है। 'काल' आनेपर संख्या अशुभ समझनी चाहिये। दूसरे शब्दोंमें, सीढ़ियों आदिकी 'इन्द्र-काल-राजा'—इस क्रमसे गणना करे। यदि अन्तमें 'काल' आये तो अशुभ है।

स्तम्भ—

घरके खम्भे सम-संख्यामें होनेपर ही उत्तम कहे गये हैं, विषम संख्यामें नहीं।

प्रदक्षिण-क्रमके बिना स्थापित किये गये स्तम्भ भयदायक होते हैं।

चित्र—

निम्नलिखित चित्र घरकी दीवार आदिमें नहीं लगाने चाहिये और न किवाड़ आदिमें अंकित कराने चाहिये—

सिंह, सियार, सूअर, साँप, गिद्ध, उल्लू, कबूतर, कौआ, बाज, बगुला, गोह, बन्दर, ऊँट, बिल्ली आदिके चित्र। मांसभक्षी पशु-पक्षियोंके चित्र। रामायण, महाभारत आदिके युद्धके चित्र। खड्गयुद्धके चित्र। इन्द्रजालिक चित्र। राक्षसों, भूत-प्रेतोंके भयङ्कर चित्र। रोते हुए मनुष्यके चित्र—ये सभी चित्र अशुभ फलदायक हैं।

इतिहास और पुराणोंमें कहे गये वृत्तान्तोंके प्रतिरूपक चित्र गृहमें निन्दित हैं। ये मन्दिरमें ही होने चाहिये। इन्द्रजालके समान झूठे तथा भीषण प्रतिरूपक भी घरमें नहीं बनाने चाहिये।

(समराङ्गण० ३८। ७१-७२)

दीवार—

(१) घरकी चौड़ाईके सोलहवें भागके बराबर दीवार बनानी चाहिये। परन्तु यह नियम ईंटकी दीवारके लिये है।

(२) नई ईंटके साथ पुरानी ईंट और कच्ची ईंटके साथ पक्की ईंट नहीं लगानी चाहिये। यदि लगाना अनिवार्य हो तो पुरानी या कच्ची ईंटको नीचे लगाकर उसके ऊपर नयी या पक्की ईंट लगाये। फिर पुरानी या कच्ची ईंट लगाकर नयी या पक्की ईंट लगाये। इस क्रमसे दोनों प्रकारकी ईंट लगायी जा सकती है।

(३) जो दीवार ऊपरसे भारी तथा नीचेसे हलकी हो, जिसमें गारा कहीं कम तथा कही अधिक लगा हो, जो कहीं मोटी तथा कहीं पतली हो, जिसमें जोड़की रेखा प्रतीत होती हो, वह धनकी हानि करनेवाली होती है।

(४) दीवार चुननेपर यदि **पूर्व**की दीवार बाहर निकल जाय तो गृहस्वामीके लिये तीव्र राजदण्ड-भय होता है।

दक्षिणकी दीवार बाहर निकल जाय तो व्याधि और राजदण्ड-भय होता है।

पश्चिमकी दीवार बाहर निकल जाय तो धनहानि एवं चोर-भय होता है।

उत्तरकी दीवार बाहर निकल जाय तो गृहस्वामी एवं मिस्त्रीपर संकट आता है।

ईशानकी दीवार बाहर निकल जाय तो गाय-बैल और गुरुजनोंका नाश होता है।

आग्नेयकी दीवार बाहर निकल जाय तो भीषण अग्निभय तथा गृहस्वामीके लिये प्राणसंकटकी स्थिति आती है।

नैर्ऋत्यकी दीवार बाहर निकल जाय तो कलह आदि उपद्रव एवं पत्नीपर संकट आता है।

वायव्यकी दीवार बाहर निकल जाय तो वाहन, पुत्र एवं नौकरोंके लिये उपद्रव उत्पन्न होता है।

उन्नीसवाँ अध्याय

द्वार-वेध

(१) मुख्य द्वारके सामने कोई वस्तु हो तो उसे द्वार-वेध कहते हैं। द्वारके सामने किस वस्तुके होनेसे क्या फल होता है, इसे बताया जाता है—

द्वारके सामने मार्ग (गली या सड़क) होनेसे गृहस्वामीकी मृत्यु, कुलका क्षय, बन्धन तथा अनेक रोग व शोक होते हैं।

वृक्ष होनेसे बालकोंमें दोष, ऐश्वर्यका नाश तथा नाना रोग होते हैं।

कीचड़ होनेसे शोक होता है।

जलप्रवाह होनेसे व्यर्थ खर्च तथा अनेक अनर्थ होते हैं।

कुआँ होनेसे मृगी रोग, अतिसार रोग, भय तथा बन्धन होता है।

मन्दिर होनेसे गृहस्वामीका नाश और बालकोंको दु:ख होता है।

मन्दिरका द्वार होनेसे विनाश होता है।

खम्भा होनेसे स्त्रियोंमें दोष, गृहस्वामीकी मृत्यु, दासत्व तथा दुर्भाग्यकी प्राप्ति होती है।

कील होनेसे अग्निभय होता है।

अपवित्र वस्तु होनेसे गृहस्वामिनी वन्ध्या होती है।

दूसरे घरका द्वार होनेसे धन-धान्यका विनाश होता है।

ध्वजा होनेसे द्रव्यका नाश तथा रोग होता है।

दीवार होनेसे दरिद्रता होती है।

गड्ढा होनेसे कलह, विरोध तथा धनकी हानि होती है।

श्मशान होनेसे भूत-प्रेत, पिशाचोंसे भय होता है।

चबूतरा होनेसे मृत्यु होती है।

पनाला होनेसे दु:ख, भय तथा कलह होता है।

बावड़ी होनेसे अतिसार रोग, सन्निपात तथा दरिद्रता होती है।

कुम्हारका चक्र होनेसे हृदयरोग तथा परदेशवास होता है।

ओखली होनेसे निर्धनता होती है।

शिला होनेसे शत्रुता तथा पथरी-रोग होता है।

भस्म होनेसे बवासीर रोग होता है।

दीमककी बाँबी होनेसे परदेशगमन होता है।

किसी मकान आदिका कोना होनेसे दुर्गति तथा मृत्युभय होता है।

ब्राह्मणका घर होनेसे कुलका नाश होता है।

भट्ठी या आवाँ होनेसे पुत्रका नाश होता है।

छाया होनेसे निर्धनता आती है।

(२) निम्नलिखित अवस्थाओंमें द्वार-वेधका दोष नहीं लगता—

(क) यदि घरकी ऊँचाईसे दुगुनी जमीन छोड़कर वेध-वस्तु हो तो उसका कोई दोष नहीं लगता।

(ख) यदि घर और वेध-वस्तुके बीचमें राजमार्ग हो तो उसका दोष नहीं लगता।

(ग) यदि वेध-वस्तु घरके सम्मुख न होकर पीछे अथवा बगलमें हो तो उसका दोष नहीं लगता।

(घ) प्रासाद (राजमहल या देवमन्दिर) और मण्डपके द्वारमें मार्गवेधका दोष नहीं लगता—**'प्रासादमण्डपद्वारे मार्गवेधो न विद्यते'** (शुक्रनीति १। २३४)।

बीसवाँ अध्याय

गृहमें जल-स्थान

(१) कुएँका स्थान—

यदि घरकी **पूर्व** दिशामें कुआँ हो तो ऐश्वर्यकी वृद्धि तथा पुष्टिकी प्राप्ति होती है।

आग्नेय दिशामें कुआँ हो तो भय, दुःख तथा पुत्रका विनाश होता है।

दक्षिण दिशामें कुआँ हो तो स्त्रीका विनाश, सन्तानकी हानि, भूमिका नाश तथा अद्‌भुत रोग होता है।

नैर्ऋत्य दिशामें कुआँ हो तो मृत्यु तथा बालकोंको भय होता है।

पश्चिम दिशामें कुआँ हो तो सम्पत्ति प्राप्त होती है।

वायव्य दिशामें कुआँ हो तो शत्रुसे पीड़ा तथा स्त्रियोंका नाश होता है।

उत्तर दिशामें कुआँ हो तो सुख होता है।

ईशान दिशामें कुआँ हो तो पुष्टि तथा ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

(कुएँके अन्तर्गत भूमिगत टंकी, बोरिंग, ट्यूबवैल आदिको भी मान लेना चाहिये।)

(२) जलाशयका स्थान—

पूर्व दिशामें जलाशय हो तो पुत्रहानि होती है।

आग्नेय दिशामें जलाशय हो तो अग्निभय होता है।

दक्षिण दिशामें जलाशय हो तो शत्रुभय तथा विनाश होता है।

नैर्ऋत्य दिशामें जलाशय हो तो स्त्रीकलह होता है।

पश्चिम दिशामें जलाशय हो तो स्त्रियोंमें दुष्टता आती है।

वायव्य दिशामें जलाशय हो तो निर्धनता आती है।

उत्तर दिशामें जलाशय हो तो धनकी वृद्धि होती है।

ईशान दिशामें जलाशय हो तो पुत्रवृद्धि होती है।

(जलाशयके अन्तर्गत ऊर्ध्व टंकीको भी मान लेना चाहिये।)

(३) जलप्रवाह (जल गिरने)-का स्थान—

जलप्रवाह **पूर्व** दिशामें हो तो धनकी प्राप्ति होती है।

आग्नेय दिशामें हो तो धनका नाश तथा मृत्यु होती है।

दक्षिण दिशामें हो तो निर्धनता, रोग तथा प्राणसंकट उत्पन्न होता है।

नैर्ऋत्य दिशामें हो तो प्राणघातक, कलह तथा क्षय करता है।

पश्चिम दिशामें हो तो पुत्रकी मृत्यु होती है।

वायव्य दिशामें हो तो सुखकी प्राप्ति होती है।

उत्तर दिशामें हो तो राज्य-सम्पत्ति तथा सर्वसिद्धिकी प्राप्ति होती है।

ईशान दिशामें हो तो धन तथा सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है।

(४) दिनके दूसरे या तीसरे पहर किसी घर या मन्दिरकी छाया यदि किसी कुएँपर पड़े तो वह घर शुभकारक एवं निवास करनेयोग्य नहीं होता।

इक्कीसवाँ अध्याय

गृहके विविध भेद

जिस घरमें एक दिशामें एक ही शाला अर्थात् कमरा हो और अन्य दिशाओंमें कोई कमरा न होकर बरामदामात्र हो, उस घरको 'एकशाल' कहते हैं। जिस घरमें दो दिशाओंमें दो कमरे हों, उस घरको 'द्विशाल' कहते हैं। जिस घरमें तीन दिशाओंमें तीन कमरे हों, उस घरको 'त्रिशाल' कहते हैं। जिस घरकी चारों दिशाओंमें चार कमरे हों, उस घरको 'चतु:शाल' कहते हैं। इस प्रकार वास्तुशास्त्रमें गृहके विविध भेद कहे गये हैं।

एकशाल-गृह

एकशाल-गृहका कमरा दक्षिणभागमें बनता है और उसका द्वार उत्तरकी ओर होता है।

यदि एकशाल-गृहकी चारों दिशाओंमें द्वार हो तो उस घरको 'विश्वतोमुख' कहते हैं। ऐसा घर सभी मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला होता है।

यदि पश्चिममें कोई द्वार न हो (अन्य तीन दिशाओंमें द्वार हों) तो उस घरको 'विजय' कहते हैं। ऐसा घर सदा धन-सम्पत्ति तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला होता है।

यदि उत्तरमें कोई द्वार न हो तो उस घरको 'सूकर' कहते हैं। ऐसे घरमें सूकरोंसे अथवा राजासे भय होता है।

यदि पूर्वमें कोई द्वार न हो तो उस घरको 'व्याघ्रपाद' कहते हैं। ऐसे घरमें पशु तथा चोरसे भय होता है।

यदि दक्षिणमें कोई द्वार न हो तो उस घरको 'शेखर' कहते हैं। ऐसा घर सब वस्तुओं तथा रत्नोंको देनेवाला होता है।

द्विशाल-गृह

यदि पश्चिम और दक्षिण दिशाओंमें दो कमरे हों तो उस घरको 'सिद्धार्थ' कहते हैं। ऐसा घर धन-धान्य देनेवाला, क्षेमकी वृद्धि करनेवाला तथा पुत्रप्रद होता है।

यदि पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें दो कमरे हों तो उस घरको 'यमसूर्य' कहते हैं। ऐसा घर गृहस्वामीके लिये मृत्युदायक, राजा, शत्रु, चोर और अग्निसे भय देनेवाला तथा कुलका नाश करनेवाला होता है।

यदि उत्तर और पूर्व दिशाओंमें दो कमरे हों तो उस घरको 'दण्ड' कहते हैं। ऐसा घर दण्डसे मृत्यु देनेवाला, अकालमृत्यु देनेवाला तथा शत्रुओंसे भय देनेवाला होता है।

यदि पूर्व और दक्षिण दिशाओंमें दो कमरे हों तो उस घरको 'वात' कहते हैं। ऐसा घर सदा कलह करानेवाला, वातरोग देनेवाला, सर्प, चोर तथा शस्त्रसे भय देनेवाला तथा पराजय देनेवाला होता है।

यदि पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें दो कमरे हों तो उस घरको 'चुल्ली' कहते हैं। ऐसा घर धनका नाश करनेवाला, मृत्यु देनेवाला, स्त्रियोंको विधवा करनेवाला तथा अनेक भय देनेवाला होता है।

यदि दक्षिण और उत्तर दिशाओंमें दो कमरे हों तो उस घरको 'काच' कहते हैं। ऐसा घर बन्धुओंसे विरोध करनेवाला तथा भयदायक होता है।

त्रिशाल-गृह

यदि मकानके भीतर उत्तर दिशामें कोई कमरा न हो (शेष तीन दिशाओंमें तीन कमरे हों) तो उस घरको 'हिरण्य' या 'धान्यक' कहते हैं। ऐसा घर क्षेमकारक, वृद्धिकारक तथा अनेक

पुत्र देनेवाला होता है।

यदि पूर्व दिशामें कोई कमरा न हो तो उस घरको 'सुक्षेत्र' कहते हैं। ऐसा घर धन, पुत्र, यश और आयुको देनेवाला तथा शोक और मोहका नाश करनेवाला होता है।

यदि दक्षिण दिशामें कोई कमरा न हो तो उस घरको 'विशाल' कहते हैं। ऐसा घर धनका नाश करनेवाला, कुलका क्षय करनेवाला और सब प्रकारके रोग तथा भय देनेवाला होता है।

यदि पश्चिम दिशामें कोई कमरा न हो तो उस घरको 'पक्षघ्न' कहते हैं। ऐसा घर मित्र, भाई-बन्धु तथा पुत्रोंका नाश करनेवाला, अनेक शत्रुओंको उत्पन्न करनेवाला तथा सब प्रकारके भय देनेवाला होता है।

चतु:शाल-गृह

जिस चतु:शाल घरकी चारों दिशाओंमें चार दरवाजे हों, उस सर्वतोमुखी घरको 'सर्वतोभद्र' कहते हैं। ऐसा घर राजा और देवता (मन्दिर)-के लिये शुभ होता है, दूसरोंके लिये नहीं।

यदि पश्चिम दिशामें द्वार न हो (शेष तीन दिशाओंमें द्वार हों) तो उस घरको 'नन्द्यावर्त' कहते हैं। यदि दक्षिण दिशामें द्वार न हो तो उस घरको 'वर्धमान' कहते हैं। यदि पूर्व दिशामें द्वार न हो तो उस घरको 'स्वस्तिक' कहते हैं। यदि उत्तर दिशामें द्वार न हो तो उस घरको 'रुचक' कहते हैं।

नन्द्यावर्त तथा वर्धमान घर सबके लिये श्रेष्ठ हैं। स्वस्तिक तथा रुचक घर मध्यम फलवाले हैं।

बाईसवाँ अध्याय

गृहके आन्तरिक कक्ष

(१) घरके भीतर किस दिशामें कौन-सा कक्ष होना चाहिये—इसको विभिन्न ग्रन्थोंमें इस प्रकार बताया गया है—

पूर्वमें—स्नानगृह।

आग्नेयमें—रसोई।

दक्षिणमें—शयनकक्ष, ओखली रखनेका स्थान।

नैर्ऋत्यमें—शस्त्रागार, सूतिकागृह, वस्त्र रखनेका स्थान, गृहसामग्री, शौचालय, बड़े भाई अथवा पिताका कमरा।

पश्चिममें—भोजन करनेका स्थान।

वायव्यमें—अन्न-भण्डार, पशुगृह, शौचालय।

उत्तरमें—देवगृह, भण्डार, जल रखनेका स्थान, धन-संग्रहका स्थान।

ईशानमें—देवगृह (पूजागृह), जल रखनेका स्थान।

पूर्व-आग्नेयमें—मन्थन-कार्य करनेका स्थान।

आग्नेय-दक्षिणमें—घृत रखनेका स्थान।

दक्षिण-नैर्ऋत्यमें—शौचालय।

नैर्ऋत्य-पश्चिममें—विद्याभ्यास।

पश्चिम-वायव्यमें—रोदनगृह।

वायव्य-उत्तरमें—रतिगृह।

उत्तर-ईशानमें—औषध रखने तथा चिकित्सा करनेका स्थान।

ईशान-पूर्वमें—सब वस्तुओंका संग्रह करनेका स्थान।

(२) तहखाना पूर्व, उत्तर अथवा ईशानकी तरफ बनाना चाहिये।

(३) भारी सामान नैर्ऋत्य दिशामें रखना चाहिये। पूर्व, उत्तर अथवा ईशानमें भारी सामान यथासम्भव नहीं रखना चाहिये।

(४) जिस कार्यमें अग्निकी आवश्यकता पड़ती हो, वह कार्य आग्नेय दिशामें करना चाहिये।

(५) दीपकका मुख यदि पूर्वकी ओर करके रखा जाय तो आयुकी वृद्धि होती है, उत्तरकी ओर करके रखा जाय तो धनकी प्राप्ति होती है, पश्चिमकी ओर करके रखा जाय तो दुःख प्राप्त होता है और दक्षिणकी ओर करके रखा जाय तो हानि होती है। वर्तमानमें दीपककी जगह बल्ब, ट्यूबलाइट आदि समझने चाहिये।

(६) बीचमें नीचा तथा चारों ओर ऊँचा आँगन होनेसे पुत्रका नाश होता है।

(७) यदि घरके पश्चिममें दो दरवाजे अथवा दो कमरे हों, तो उस घरमें रहनेसे दुःखकी प्राप्ति होती है।

(८) दूकान, आफिस, फैक्ट्री आदिमें मालिकको पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके बैठना चाहिये।

(९) दूकानकी वायव्य दिशामें रखा गया माल शीघ्र बिकता है। फैक्ट्रीमें भी तैयार माल वायव्य दिशामें रखना चाहिये। भारी मशीन आदि पश्चिम-दक्षिणमें रखनी चाहिये।

(१०) दूकानका मुख वायव्य दिशामें होनेसे बिक्री अच्छी होती है।

(११) ईशान दिशामें पति-पत्नीको शयन नहीं करना चाहिये, अन्यथा कोई बड़ा रोग हो सकता है।

(१२) पूजा-पाठ, ध्यान, विद्याध्ययन आदि सभी शुभ कार्य पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही करने चाहिये।

(१३) नृत्यशाला पूर्व, पश्चिम, वायव्य और आग्नेय दिशामें बनानी चाहिये।

(१४) घरके नैर्ऋत्य भागमें किरायेदार या अतिथिको नहीं ठहराना चाहिये, अन्यथा वह स्थायी हो सकता है। उन्हें वायव्य भागमें ठहराना ही उचित है।

(१५) पशुशाला—

(क) गौशालाके लिये 'वृष' आय श्रेष्ठ (शुभ) है। घुड़सालके लिये 'ध्वज', 'वृष' और 'खर' आय श्रेष्ठ है।

हाथीके निवासमें 'गज' और 'ध्वज' आय श्रेष्ठ है। ऊँटके निवासमें 'गज' और 'वृष' आय श्रेष्ठ है। ('आय' निकालनेकी विधि बारहवें अध्यायमें देखें।)

(ख) गृहस्वामीके हाथसे भूमिकी लम्बाई और चौड़ाईको जोड़कर आठका भाग दें। जो शेष बचे, उसका फल इस प्रकार है—

१-पशुहानि, २-पशुरोग, ३-पशुलाभ, ४-पशुक्षय, ५-पशुनाश, ६-पशुवृद्धि, ७-पशुभेद, ८-बहुत पशु।

(ग) भैंस, बकरे और भेड़के रहनेका स्थान दक्षिण और आग्नेयके बीचमें बनाना श्रेष्ठ है। गधे और ऊँटका स्थान ईशान और पूर्वके बीचमें बनाना श्रेष्ठ है।

(घ) पूर्व अथवा पश्चिम मुख घोड़ोंको बाँधनेसे गृहस्वामीका तेज नष्ट होता है। उत्तर अथवा दक्षिण मुख बाँधनेसे कीर्ति, यश, धन-धान्यकी वृद्धि होती है।

वास्तु-दिग्दर्शन

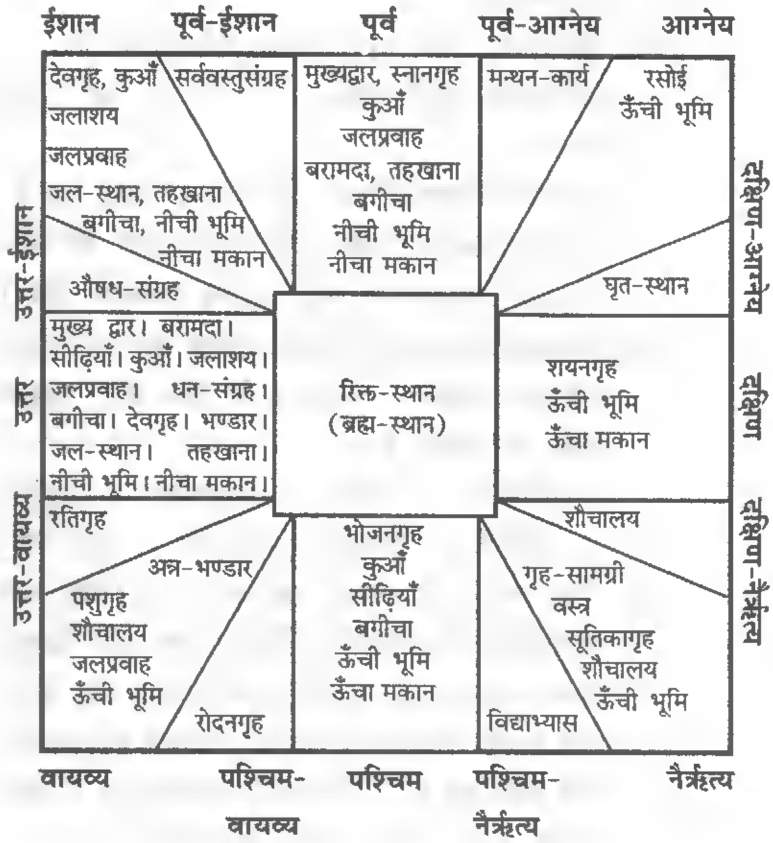
ईशान
पूर्व-ईशान
पूर्व
पूर्व-आग्नेय
आग्नेय
देवगृह, कुआँ
जलाशय
जलप्रवाह
जल-स्थान, तहखाना
बगीचा, नीची भूमि
नीचा मकान
सर्ववस्तुसंग्रह
मुख्यद्वार, स्नानगृह
कुआँ
जलप्रवाह
बरामदा, तहखाना
बगीचा
नीची भूमि
नीचा मकान
मन्थन-कार्य
रसोई
ऊँची भूमि
उत्तर-ईशान
औषध-संग्रह
दक्षिण-आग्नेय
घृत-स्थान
उत्तर
मुख्य द्वार। बरामदा।
सीढ़ियाँ। कुआँ। जलाशय।
जलप्रवाह। धन-संग्रह।
बगीचा। देवगृह। भण्डार।
जल-स्थान। तहखाना।
नीची भूमि। नीचा मकान।
रिक्त-स्थान
(ब्रह्म-स्थान)
शयनगृह
ऊँची भूमि
ऊँचा मकान
दक्षिण
उत्तर-वायव्य
रतिगृह
अन्न-भण्डार
पशुगृह
शौचालय
जलप्रवाह
ऊँची भूमि
रोदनगृह
भोजनगृह
कुआँ
सीढ़ियाँ
बगीचा
ऊँची भूमि
ऊँचा मकान
शौचालय
गृह-सामग्री
वस्त्र
सूतिकागृह
शौचालय
ऊँची भूमि
विद्याभ्यास
दक्षिण-नैर्ऋत्य
वायव्य
पश्चिम-वायव्य
पश्चिम
पश्चिम-नैर्ऋत्य
नैर्ऋत्य

तेईसवाँ अध्याय

जाननेयोग्य आवश्यक बातें

(१) शयन—

सदा पूर्व या दक्षिणकी तरफ सिर करके सोना चाहिये। उत्तर या पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे आयु क्षीण होती है तथा शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं—

नोत्तराभिमुखः सुप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च॥

(लघुव्यासस्मृति २। ८८)

उत्तरे पश्चिमे चैव न स्वपेद्धि कदाचन॥
स्वप्नादायुःक्षयं याति ब्रह्महा पुरुषो भवेत्।
न कुर्वीत ततः स्वप्नं शस्तं च पूर्वदक्षिणम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२५-१२६)

प्राच्यां दिशि शिरश्शस्तं याम्यायामथ वा नृप।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम्॥

(विष्णुपुराण ३। ११। १११)

पूर्वकी तरफ सिर करके सोनेसे विद्या प्राप्त होती है। दक्षिणकी तरफ सिर करके सोनेसे धन तथा आयुकी वृद्धि होती है। पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे प्रबल चिन्ता होती है। उत्तरकी तरफ सिर करके सोनेसे हानि तथा मृत्यु होती है, अर्थात् आयु क्षीण होती है—

प्राक्शिरः शयने विद्याद्धनमायुश्च दक्षिणे।
पश्चिमे प्रबला चिन्ता हानिमृत्युरथोत्तरे॥

(आचारमयूख; विश्वकर्मप्रकाश)

शास्त्रमें ऐसी बात भी आती है कि अपने घरमें पूर्वकी तरफ सिर करके, ससुरालमें दक्षिणकी तरफ सिर करके और परदेश (विदेश)-में पश्चिमकी तरफ सिर करके सोये, पर उत्तरकी तरफ

सिर करके कभी न सोये—

स्वगेहे प्राक्छिराः सुप्याच्छ्वशुरे दक्षिणाशिराः।
प्रत्यक्छिराः प्रवासे तु नोदक्सुप्यात्कदाचन॥

(आचारमयूख; विश्वकर्मप्रकाश १०। ४५)

मरणासन्न व्यक्तिका सिर उत्तरकी तरफ रखना चाहिये और मृत्युके बाद अन्त्येष्टि-संस्कारके समय उसका सिर दक्षिणकी तरफ रखना चाहिये।

धन-सम्पत्ति चाहनेवाले मनुष्यको अन्न, गौ, गुरु, अग्नि और देवताके स्थानके ऊपर नहीं सोना चाहिये। तात्पर्य है कि अन्न-भण्डार, गौशाला, गुरु-स्थान, रसोई और मन्दिरके ऊपर शयनकक्ष नहीं होना चाहिये।

(२) शौच—

दिनमें उत्तरकी ओर तथा रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। ऐसा करनेसे आयु क्षीण नहीं होती—

उदङ्मुखो दिवा मूत्रं विपरीतमुखो निशि।

(विष्णुपुराण ३। ११। १३)

दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ च दक्षिणामुखः॥

(याज्ञवल्क्य० १। १६, वाधूल० ८)

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः।
रात्रौ कुर्याद्दक्षिणास्य एवं ह्यायुर्न हीयते॥

(वसिष्ठस्मृति ६। १०)

प्रातः पूर्वकी ओर तथा रात्रि पश्चिमकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करनेसे आधासीसी (माइग्रेन) रोग होता है।

(३) दन्तधावन आदि—

सदा पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके ही दन्तधावन

(दातुन) करना चाहिये। पश्चिम और दक्षिणकी ओर मुख करके दन्तधावन नहीं करना चाहिये—

पश्चिमे दक्षिणे चैव न कुर्याद्दन्तधावनम्।

(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२५)

अन्य ग्रन्थमें केवल पूर्व अथवा ईशानकी ओर मुख करके दन्तधावन करनेका विधान आया है—

प्राङ्मुखस्य धृतिः सौख्यं शरीरारोग्यमेव च।
दक्षिणेन तथा कष्टं पश्चिमेन पराजयः॥
उत्तरेण गवां नाशः स्त्रीणां परिजनस्य च।
पूर्वोत्तरे तु दिग्भागे सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥

(आचारमयूख)

अर्थात् पूर्वकी ओर मुख करके दन्तधावन करनेसे धैर्य, सुख और शरीरकी नीरोगता प्राप्त होती है। दक्षिणकी ओर मुख करनेसे कष्ट और पश्चिमकी ओर मुख करनेसे पराजय प्राप्त होती है। उत्तरकी ओर मुख करनेसे गौ, स्त्री एवं परिजनोंका नाश होता है। पूर्वोत्तर (ईशान) दिशाकी ओर मुख करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है।

क्षौरकर्म (बाल कटवाना) पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके ही कराना चाहिये।

(४) देवपूजन—

कुछ वास्तुशास्त्री घरमें पत्थरकी मूर्तियोंका अथवा मन्दिरका निषेध करते हैं। वास्तवमें मूर्तिका निषेध नहीं है, प्रत्युत एक बित्तेसे अधिक ऊँची मूर्तिका ही घरमें निषेध है*—

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥

(मत्स्यपुराण २५८। २२)

---

* अँगूठेके सिरेसे लेकर कनिष्ठिकाके छोरतक एक बित्ता होता है। एक बित्तेमें बारह अंगुल होते हैं।

'घरमें अँगूठेके पर्वसे लेकर एक बित्ता परिमाणकी ही प्रतिमा होनी चाहिये। इससे बड़ी प्रतिमाको विद्वान्‌लोग घरमें शुभ नहीं बताते।'

शैलीं दारुमयीं हैमीं धात्वाद्याकारसम्भवाम्।
प्रतिष्ठां वै प्रकुर्वीत प्रासादे वा गृहे नृप॥

(वृद्धपाराशर)

'पत्थर, काष्ठ, सोना या अन्य धातुओंकी मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा घर या प्रासाद (देवमन्दिर)-में करनी चाहिये।'

घरमें एक बित्तेसे अधिक बड़ी पत्थरकी मूर्तिकी स्थापना करनेसे गृहस्वामीकी सन्तान नहीं होती। उसकी स्थापना देवमन्दिरमें ही करनी चाहिये।

घरमें दो शिवलिङ्ग, तीन गणेश, दो शङ्ख, दो सूर्य-प्रतिमा, तीन देवी प्रतिमा, दो द्वारकाके (गोमती) चक्र और दो शालग्रामका पूजन करनेसे गृहस्वामीको उद्वेग (अशान्ति) प्राप्त होती है—

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं गणेशत्रितयं तथा।
शङ्खद्वयं तथा सूर्यो नार्च्यौ शक्तित्रयं तथा॥
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु शालग्रामशिलाद्वयम्।
तेषां तु पूजनेनैव उद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही॥

(आचारप्रकाश; आचारेन्दु)

(५) भोजन—

भोजन सदा पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके करना चाहिये—

'प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि' (विष्णुपुराण ३। ११। ७८)

'प्राङ्मुखऽन्नानि भुञ्जीत' (वसिष्ठस्मृति १२। १५)

दक्षिण अथवा पश्चिमकी ओर मुख करके भोजन नहीं करना चाहिये—

भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणामुखो न च प्रतीच्यामभिभोजनीयम्॥

(वामनपुराण १४। ५१)

दक्षिणकी ओर मुख करके भोजन करनेसे उस भोजनमें राक्षसी प्रभाव आ जाता है—

'तद् वै रक्षांसि भुञ्जते' (पाराशरस्मृति १। ५९)

अप्रक्षालितपादस्तु यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः।
यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते प्रेता भुञ्जन्ति नित्यशः॥

(स्कन्दपुराण, प्रभास० २१६। ४१)

'जो पैर धोये बिना खाता है, जो दक्षिणकी ओर मुँह करके खाता है अथवा जो सिरमें वस्त्र लपेटकर (सिर ढककर) खाता है, उसके उस अन्नको सदा प्रेत ही खाते हैं।'

यद् वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद् भुङ्क्ते दक्षिणामुखः।
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥

(महाभारत, अनु० ९०। १९)

'जो सिरमें वस्त्र लपेटकर भोजन करता है, जो दक्षिणकी ओर मुख करके भोजन करता है तथा जो जूते पहने भोजन करता है, उसका वह सारा भोजन आसुर समझना चाहिये।'

प्राच्यां नरो लभेदायुर्याम्यां प्रेतत्वमश्नुते।
वारुणे च भवेद्रोगी आयुर्वित्तं तथोत्तरे॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ५१। १२८)

'पूर्वकी ओर मुख करके खानेसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है, दक्षिणकी ओर मुख करके खानेसे प्रेतत्वकी प्राप्ति होती है, पश्चिमकी ओर मुख करके खानेसे मनुष्य रोगी होता है और उत्तरकी ओर मुख करके खानेसे आयु तथा धनकी प्राप्ति होती है।'

चौबीसवाँ अध्याय

गृहप्रवेश

(१) अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम्।
गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत्॥

(नारदपुराण, पूर्व० ५६। ६१९)

'बिना दरवाजा लगा, बिना छतवाला, बिना देवताओंको बलि (नैवेद्य) तथा ब्राह्मण-भोजन कराये हुए घरमें प्रवेश नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसा घर विपत्तियोंका घर होता है।'

(२) गृहप्रवेश माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठमासमें करना चाहिये। कार्तिक और मार्गशीर्षमें गृहप्रवेश मध्यम है। चैत्र, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और पौषमें गृहप्रवेश करनेसे हानि तथा शत्रुभय होता है।

माघमासमें गृहप्रवेश करनेसे धनका लाभ होता है।

फाल्गुनमासमें गृहप्रवेश करनेसे पुत्र और धनकी प्राप्ति होती है।

वैशाखमासमें गृहप्रवेश करनेसे धन-धान्यकी वृद्धि होती है।

ज्येष्ठमासमें गृहप्रवेश करनेसे पशु और पुत्रका लाभ होता है।

(३) जिस घरका द्वार **पूर्व**की ओर मुखवाला हो, उस घरमें पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमामें प्रवेश करना चाहिये।

जिस घरका द्वार **दक्षिण**की ओर मुखवाला हो, उस घरमें प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथियोंमें प्रवेश करना चाहिये।

जिस घरका द्वार **पश्चिम**की ओर मुखवाला हो, उस घरमें द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियोंमें प्रवेश करना चाहिये।

जिस घरका द्वार **उत्तर**की ओर मुखवाला हो, उस घरमें तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियोंमें प्रवेश करना चाहिये।

चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और अमावस्या—इन तिथियोंमें गृह-प्रवेश करना शुभ नहीं है।

(४) रविवार और मंगलवारके दिन गृहप्रवेश नहीं करना चाहिये। शनिवारमें गृहप्रवेश करनेसे चोरका भय रहता है।

पचीसवाँ अध्याय

वास्तुदोष-निवारणके उपाय

(१) घरमें वास्तुदोष होनेपर उचित यही है कि उसे यथासम्भव वास्तुशास्त्रके अनुसार ठीक कर ले अथवा उसे बेचकर दूसरा मकान अथवा जमीन खरीद ले।

जहाँतक हो सके, निर्मित मकानमें तोड़-फोड़ नहीं करना चाहिये। तोड़-फोड़ करनेसे वास्तुभङ्गका दोष लगता है। इसलिये वास्तुशास्त्रमें आया है—

जीर्णं गेहं भित्तिभग्नं विशीर्णं तत्पातव्यं स्वर्णनागस्य दन्तैः।
गोशृङ्गैर्वा शिल्पिना निश्चयेन पूजां कृत्वा वास्तुदोषो न तस्य॥

(वास्तुराज० ५। ३८)

'घरके पुराना होनेपर, दीवारके गिर जानेपर अथवा छिन्न-भिन्न होनेपर उसे सोनेसे बने हुए नागदन्त (हाथीदाँत) अथवा गोशृङ्ग (गायके सींग)-से वास्तुपूजनपूर्वक गिरवानेसे वास्तुभङ्गका दोष नहीं लगता।'

(२) घरमें अखण्डरूपसे श्रीरामचरितमानसके नौ पाठ करनेसे वास्तुजनित दोष दूर हो जाता है।

(३) घरमें नौ दिनतक अखण्ड भगवन्नाम-कीर्तन करनेसे वास्तुजनित दोषका निवारण हो जाता है।

(४) स्कन्दपुराणमें आया है कि कात्यायन ऋषिने हाटकेश्वर-क्षेत्रमें 'वास्तुपद' नामक तीर्थका निर्माण किया और विश्वकर्माके साथ वहाँ वास्तुपूजन किया। उस तीर्थमें अड़तालीस देवताओंकी पूजा होती है। घरमें जो शिला, कुत्सित पद और कुवास्तुजनित दोष होते हैं, वे उस तीर्थके दर्शनसे मिट जाते हैं। शिल्प आदिकी दृष्टिसे दोषयुक्त और उपद्रवपूर्ण घरको पाकर भी यदि मनुष्य उस

तीर्थका संयोग प्राप्त कर ले तो उसी दिनसे उसके घरमें अभ्युदय होने लगता है (स्कन्द०, नागर० १३२)।

[वर्तमानमें इस 'वास्तुपद' तीर्थकी स्थितिके विषयमें हमें जानकारी नहीं मिल सकी। कोई सज्जन जानते हों तो अवगत करानेकी कृपा करें।]

(५) मुख्य द्वारके ऊपर सिन्दूरसे स्वस्तिकका चिह्न बनायें। यह चिह्न नौ अंगुल लम्बा तथा नौ अंगुल चौड़ा होना चाहिये। घरमें जहाँ-जहाँ वास्तुदोष हो, वहाँ-वहाँ यह चिह्न बनाया जा सकता है।

स्वस्तिकका चिह्न— 卐

निष्कर्ष — पूर्व दिशा, ईशान कोण एवं उत्तर दिशा में नीचा मकान हो। अन्य दिशाओं में ऊँचा हो।

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

जलप्रवाह का ढाल भी उपरोक्त दिशाओं में होगा।

1 = रसोई = आग्नेय कोण (मोटर गैराज), (12) भोजन गृह = पश्चिम दिशा
2. बरामदा = पूर्व दिशा, उत्तर दिशा, (13) अन्न भण्डार = वायव्य कोण
3 = देवगृह = ईशान कोण, उत्तर दिशा (14) पशुगृह = वायव्य कोण
4 = विद्या अध्ययन = पश्चिम-नैर्ऋत्य कोण (15) औषधालय = उत्तर-ईशान कोण
5 = शौचालय = नैर्ऋत्य कोण, दक्षिण नैर्ऋत्य कोण, वायव्य कोण
स्नानघर = पूर्व दिशा (16) वस्त्र एवं अन्य सामग्री = नैर्ऋत्य कोण
(17) घृत संग्रह = दक्षिण आग्नेय कोण
6 = शयनगृह = दक्षिण दिशा, (7) स्वागत गृह = उत्तर-वायव्य कोण,
(18) सब वस्तु संग्रह = पूर्व ईशान कोण, उत्तर दिशा
8 = तहखाना = पूर्व दिशा, उत्तर दिशा, ईशान कोण.
(19) रिक्त स्थान = ब्रह्म स्थान, भूमि के मध्य
9 = कुआँ, जलाशय = पूर्व दिशा, ईशान कोण, उत्तर दिशा, पश्चिम दिशा
10 = सीढ़ियाँ = उत्तर दिशा, पश्चिम दिशा
11 = बगीचा = पूर्व दिशा, ईशान कोण, उत्तर दिशा, पश्चिम दिशा